भारतीय कला का परिचय

भाग 2

कक्षा 12 के लिए
ललित कला की पाठ्यपुस्तक

© NCERT
not to be republished

12148

विद्यया ऽमृतमश्नुते
एन सी ई आर टी
NCERT

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

12148 – भारतीय कला का परिचय, भाग 2
कक्षा 12 के लिए ललित कला की पाठ्यपुस्तक

ISBN 978-93-91444-94-5

प्रथम संस्करण
मार्च 2022 फाल्गुन 1943

PD 40T RPS

© *राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, 2022*

सर्वाधिकार सुरक्षित

- प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना इस प्रकाशन के किसी भाग को छापना तथा इलेक्ट्रॉनिकी, मशीनी, फोटोप्रतिलिपि, रिकॉर्डिंग अथवा किसी अन्य विधि से पुन: प्रयोग पद्धति द्वारा उसका संग्रहण अथवा प्रसारण वर्जित है।
- इस पुस्तक की बिक्री इस शर्त के साथ की गई है कि प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना यह पुस्तक अपने मूल आवरण अथवा जिल्द के अलावा किसी अन्य प्रकार से व्यापार द्वारा उधारी पर, पुनर्विक्रय या किराए पर न दी जाएगी, न बेची जाएगी।
- इस प्रकाशन का सही मूल्य इस पृष्ठ पर मुद्रित है। रबड़ की मुहर अथवा चिपकाई गई पर्ची (स्टिकर) या किसी अन्य विधि द्वारा अंकित कोई भी संशोधित मूल्य गलत है तथा मान्य नहीं होगा।

एन.सी.ई.आर.टी., प्रकाशन प्रभाग के कार्यालय

एन.सी.ई.आर.टी. कैंपस
श्री अरविंद मार्ग
नयी दिल्ली 110 016 — **Phone : 011-26562708**

108, 100 फीट रोड
हेली एक्सटेंशन, होस्डेकेरे
बनाशंकरी III स्टेज
बेंगलुरु 560 085 — **Phone : 080-26725740**

नवजीवन ट्रस्ट भवन
डाकघर नवजीवन
अहमदाबाद 380 014 — **Phone : 079-27541446**

सी.डब्ल्यू.सी. कैंपस
निकट: धनकल बस स्टॉप
पनिहटी
कोलकाता 700 114 — **Phone : 033-25530454**

सी.डब्ल्यू.सी. कॉम्प्लैक्स
मालीगाँव
गुवाहाटी 781021 — **Phone : 0361-2674869**

₹ 115.00

© NCERT not to be republished

एन.सी.ई.आर.टी. वाटरमार्क 80 जी.एस.एम. पेपर पर मुद्रित।

प्रकाशन प्रभाग में सचिव, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविंद मार्ग, नयी दिल्ली 110016 द्वारा प्रकाशित तथा निखिल ऑफ़सेट, 223, 127, डी.एस.आई.डी.सी. कॉम्प्लेक्स, ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फ़ेज़-I, नयी दिल्ली-110 020 द्वारा मुद्रित।

प्रकाशन सहयोग

अध्यक्ष, प्रकाशन प्रभाग	:	*अनूप कुमार राजपूत*
मुख्य संपादक	:	*श्वेता उप्पल*
मुख्य उत्पादन अधिकारी	:	*अरुण चितकारा*
मुख्य व्यापार प्रबंधक	:	*विपिन दिवान*
संपादन सहायक	:	*ऋषिपाल सिंह*
उत्पादन सहायक	:	*प्रकाश वीर सिंह*

आवरण एवं सज्जा
रितू टोपा

आमुख

भारत में विद्यालयी शिक्षा के लिए उत्तरदायी होने के कारण राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् (रा.शै.अ.प्र.प.) द्वारा कला संबंधी विषयों के पाठ्यक्रम को विकसित करने की पहल विभिन्न उच्च माध्यमिक कक्षाओ में प्रमुखता से की गई है। *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005* के अस्तित्व में आने के बाद पाठ्यपुस्तकों के विकास, उनकी प्रस्तुति, अंतःविषय दृष्टिकोण, अभ्यास के प्रकार आदि में परिवर्तन किए गए हैं।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 भी विद्यार्थियों की शिक्षा और अधिक लचीली बनाने पर ज़ोर देती है। नीति माध्यमिक स्तर पर विद्यार्थियों को विषय चयन के उपयुक्त व विस्तृत विकल्प प्रस्तुत करती है। इसमें कला से संबंधित विषय भी शामिल हैं। जिससे विद्यार्थी शैक्षिक पथ एवं स्वयं की जीवन योजनाओं की रूपरेखा बना सकें। इसलिए उच्चतर माध्यमिक स्तर पर, जो कि विद्यालय छोड़ने की अवस्था भी होती है, उस परिस्थिति में उनके पास उच्च शिक्षा या व्यावसायिक शिक्षा के वृहत् क्षेत्रों के विकल्प होंगे।

शिक्षा के इस स्तर पर इस बात पर ज़ोर दिया जा रहा है कि माध्यमिक स्तर पर दृश्य एवं ललित कला को केवल एक विषय के रूप में न समझा जाए, बल्कि अब उसे व्यावसायिक शिक्षा के रूप में भी देखा जाए। ललित कला में सीखने के उद्देश्य प्रारंभिक शिक्षा में केवल अभिव्यक्ति तक सीमित थे, लेकिन आज यह कौशल को परिपूर्णता व संरचना (डिज़ाइन) में दृष्टिकोण विकसित करने पर बल देते हैं। विद्यार्थियों को उनकी अपनी भाषा और माध्यम में स्वयं की अभिव्यक्ति पर बल दिया गया है। साथ ही, कला के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य को भारत और दुनिया के विस्तीर्ण संदर्भ में विकसित करने की आवश्यकता है। कला इतिहास शिक्षा का एक प्रमुख क्षेत्र है, जो कला के अध्ययन का एक अंग या विषय भी है। जिससे विद्यार्थी देश की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत के बारे में ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

यह देखा गया है कि कई शिक्षा बोर्ड दृश्य या ललित कला को वरिष्ठ माध्यमिक स्तर पर एक वैकल्पिक विषय के रूप में प्रदान करते हैं, जिसमें चित्रकला, मूर्तिकला, व्यावसायिक कला शामिल हैं। इनकी समीक्षा की गई और एक नए पाठ्यक्रम का गठन किया गया। यह विषय वैकल्पिक या व्यावहारिक घटक से अलग कला सिद्धांत की चर्चा करता है, जो विद्यार्थियों को देश की कला और वास्तुकला की विविध ऐतिहासिक विरासत से परिचित करवाता है। ललित कला की इस पाठ्यपुस्तक को कक्षा 12 के लिए विकसित किया गया है।

© NCERT not to be republished

हमारा प्रयास भारतीय कला इतिहास के व्यापक दृष्टिकोण को प्रस्तुत करना है और इसे कालानुक्रमिक के अनुरूप और समसामयिक निरंतरता में रखना है। एक संगठन के रूप में रा.शै.अ.प्र.प. प्रणालीगत सुधार और अपने प्रकाशनों या उत्पादों की गुणवत्ता में निरंतर विकास के लिए प्रतिबद्ध है। पाठ्यपुस्तक को संवर्धित करने हेतु परिषद् टिप्पणियों और सुझावों का स्वागत करती है।

हृषिकेश सेनापति
निदेशक
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान
और प्रशिक्षण परिषद्

नयी दिल्ली
अगस्त 2020

© NCERT not to be republished

प्राक्कथन

उन्नीसवीं शताब्दी में ब्रिटिश शासन के दौरान, भारतीय विद्वानों के सहयोग से कुछ ब्रिटिश औपनिवेशिक अधिकारियों ने भारत के अतीत का अध्ययन करने में सक्रिय रुचि ली। इसके साथ ही भारतीय उपमहाद्वीप में स्थापत्य स्मारकों, मूर्तियों और चित्रों का एक सुव्यवस्थित या क्रमवार अध्ययन शुरू हुआ। धार्मिक ग्रंथों के अध्ययन के साथ, धर्म के इतिहास का अध्ययन भी किया गया और मूर्तियों और चित्रों की पहचान शुरू की गई, जो प्रारंभिक छात्रवृत्ति का एक प्रमुख क्षेत्र बन गया।

जैसे-जैसे कला इतिहास का अध्ययन दस्तावेज़ और उत्खनन के द्वारा व्यापक होता गया, कला वस्तुओं का वर्णन अध्ययन की एक प्रमुख विधि के रूप में विकसित हुआ। बीसवीं सदी के प्रारंभ में कुछ प्रमुख अध्ययन हुए जो कला के मात्र विवरण से परे थे। तत्पश्चात् भारतीय कला इतिहास के पश्चिमी और भारतीय विद्वानों की कई पीढ़ियों ने विषय का गहराई से अध्ययन किया है, जो हमें स्थापत्य स्मारकों, मूर्तियों और चित्रों में परिलक्षित भारतीय सभ्यता के शानदार अतीत का एहसास कराती है। भारतीय दृष्टिकोण में भवन निर्माण, मूर्तिकला और चित्रकला एक ओर यूरोपीय कला से और दूसरी ओर सुदूर पूर्वी कला से भिन्न व विशिष्ट है। इसलिए, भारतीय कला का ऐतिहासिक अध्ययन, विश्वविद्यालय स्तर की शिक्षा में प्रतिष्ठित शैक्षणिक पाठ्यक्रम बनकर उभरा है।

प्राय: कला वस्तुओं का अध्ययन दो महत्वपूर्ण तत्त्वों पर आधारित होता है— रूपात्मक या शैलीगत विश्लेषण और सामग्री एवं प्रासंगिक अध्ययन। पहली श्रेणी में वास्तुकला, मूर्तिकला और चित्रों की विशेषताओं का रूपात्मक अध्ययन शामिल है, जबकि दूसरी सामग्री विश्लेषण पर केंद्रित है, जिसमें कई घटक या अंग हैं, जैसे कि प्रतिमान-लक्षण (आइकनोग्राफ़िक) का अध्ययन, आख्यान तथा सांकेतिकता (सेमीक्यूटिक्स) आदि।

कक्षा 11 और 12 के लिए पाठ्यपुस्तकों की इस शृंखला में, कक्षा 11 की पाठ्यपुस्तक शुरुआत से मध्ययुगीन काल तक के विभिन्न दृश्य कला रूपों का परिचय देती है, जैसे— भित्ति चित्र, चित्रकला, मूर्तियाँ, वास्तुकला आदि। कक्षा 12 की इस पाठ्यपुस्तक में मध्ययुगीन और आधुनिक काल के दौरान भारत में चित्रकला परंपराओं के विकास पर अध्याय शामिल हैं।

उच्चतर माध्यमिक स्तर की युवा पीढ़ी को ध्यान में रखते हुए, भारतीय कला में विकास की समझ विकसित करने के लिए पाठ्यपुस्तक कुछ उदाहरणों की रूपरेखा प्रस्तुत करती है।

इस पाठ्यपुस्तक में आठ अध्याय हैं और प्रत्येक अध्याय एक विशेष शैली या चित्रकला के समयकाल और अन्य दृश्य कलाओं की चर्चा से संबंधित है। पहला अध्याय पश्चिमी और पूर्वी भारत में ताड़ के पत्ते की पांडुलिपि चित्रकला के बारे में बात करता है, जो परवर्ती विभिन्न चित्रकला स्कूलों के विकास की पृष्ठभूमि के रूप में कार्य करता है। दूसरा अध्याय 'राजस्थानी चित्रकला शैली' से संबंधित है। राजस्थानी चित्रों की प्रत्येक शैली एक राजपूत राजा के एक अलग दरबार से संबंधित है और इसकी संरचना, रंग, संदर्भ और मानवाकृतियों का चित्रण,

© NCERT not to be republished

वनस्पति और जीव, वास्तुकला आदि में अद्वितीय विशेषताएँ हैं। तीसरे अध्याय में भारतीय उपमहाद्वीप में मुगल शासन के लगभग 250 वर्षों में, फ़ारस से लाई गई संस्कृति के साथ स्थानीय संस्कृति का समावेश देखने को मिलता है। साथ ही साथ, अन्य विदेशी सांस्कृतिकता का समय के साथ स्वदेशी हो जाना उल्लेखनीय है। दृश्य विशेषताओं में कारीगरी का अलग प्रभाव देखने को मिलता है। चित्रों में ऐतिहासिक ग्रंथों के विषयों के सचित्र आत्मकथाएँ, साहित्यिक और धार्मिक पांडुलिपियाँ, महाकाव्य, वनस्पतियों का अध्ययन और जीव, साधारण लोग आदि की शृंखला का चित्रण किया गया है।

फिर आगे दक्कन के प्रांतों में चित्रकारों और राजकीय संरक्षकों ने चित्रकला की एक अनोखी शैली या स्कूल का विकास किया जिसका प्रभाव मुगल शैली पर भी देखने को मिलता है। हालाँकि, यह काफी हद तक क्षेत्रीय संस्कृतियों से संबंधित और फ़ारसी कलात्मक सौंदर्यशास्त्र से काफ़ी प्रभावित थी। दक्कन शैली की विस्तृत चर्चा चौथे अध्याय में की गई है।

लगभग उसी समय, हिमालय के राज्य गढ़वाल, कुमायूँ, हिमाचल और जम्मू क्षेत्रों के राजपूत राजाओं ने दिल्ली के कई कलाकारों को अपने राज्यों में शरण दी, जिन्होंने स्थानीय पात्रों और विषयों की विशेषताओं को खूबसूरती से अपने चित्रों में उतारा। अध्याय पाँच में पहाड़ी चित्रकला के स्कूलों का वर्णन किया गया है। उत्तरी भारत में मुगल सत्ता के पतन और व्यापारियों के रूप में ब्रिटिश और अन्य यूरोपीय लोगों के आने और बाद में शासक बनने के साथ, भारतीय पहचान को एक बार फिर संकट का सामना करना पड़ा। लेकिन एक ही समय में, इसने नई चीज़ों को अवशोषित या ग्रहण भी कर लिया, जहाँ विचारों और तकनीक दोनों के मिश्रण के साथ राष्ट्रवाद के नए विचारों की उत्पत्ति हुई। छठा अध्याय हमें कई नए विकासों के साथ एक कलात्मक युग से परिचित करवाता है।

देश के क्षितिज पर आज़ादी का नया सूर्य विभिन्न आधुनिक रुझानों को प्रकाशित करता है, जिन्हें सातवें अध्याय में चिह्नित किया गया है। आज़ादी के बाद के वर्षों में व्यक्तिगत कलात्मकता और प्रयोग की एक नई परिभाषा स्पष्ट हुई। अंतिम अध्याय में विद्यार्थियों को देश के शिल्प की स्थानीय जीवित परंपराओं या लोक कलाओं के विभिन्न पहलूओं से परिचित करवाया गया है जिसका अभ्यास विभिन्न समुदायों द्वारा पीढ़ियों से किया जा रहा है। अद्वितीय कला रूपों का एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में हस्तांतरण बिना किसी बदलाव के किया जाता रहा है। पाठ्यपुस्तक के अध्यायों में प्रयुक्त शब्दों और पारिभाषिक शब्दों की एक शब्दावली भी दी गई है। ग्रंथ सूची में, चुनिंदा पुस्तकों के संदर्भ दिए गए हैं, जो विद्यार्थियों और शिक्षकों के लिए लाभदायक हो सकते हैं। प्रत्येक अध्याय एक त्वरित प्रतिक्रिया क्यूआर (QR) कोड के साथ युक्त या समाहित है। इसके अलावा, संपूर्ण पाठ्यपुस्तक के लिए एक एकल क्यूआर (QR) कोड दिया गया है।

प्रत्येक अध्याय का चित्रों के साथ वर्णन किया गया है, जहाँ चित्रों के शीर्षकों का विस्तृत विवरण भी संकलित किया गया है। चित्रों के शीर्षकों को देखकर, कोई यह जान सकता है कि महाद्वीपों के कई संग्रहालयों, दीर्घाओं और संग्रह में भारतीय कलाकृतियाँ प्रदर्शित हैं। क्यूआर कोड (QR) के द्वारा संग्रहालयों की आधिकारिक वेबसाइट्स पर ऑनलाइन जाकर एक ही तरह के बहुतायत दृश्य खोजे जा सकते हैं।

© NCERT not to be republished

पाठ्यपुस्तक निर्माण समिति

मुख्य सलाहकार

रतन परिमू, *प्रोफ़ेसर* और *डीन* (सेवानिवृत्त), फ़ैकल्टी ऑफ़ फ़ाइन आर्ट्स, महाराजा सायाजी राव विश्वविद्यालय, वडोदरा, गुजरात

सलाहकार

नुज़हत काज़मी, *डीन,* फ़ैकल्टी ऑफ़ फ़ाइन आर्ट्स, जामिया मिल्लिया इस्लामिया, नयी दिल्ली

सदस्य

कोमल पांडे, *सहायक संग्रहाध्यक्ष,* राष्ट्रीय संग्रहालय, नयी दिल्ली

पारुल दवे मुखर्जी, *प्रोफ़ेसर,* स्कूल ऑफ आर्ट्स एण्ड एस्थेटिक्स, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नयी दिल्ली

रीता सोढ़ा, *सहायक प्रोफ़ेसर,* फ़ैकल्टी ऑफ़ फ़ाइन आर्ट्स, महाराजा सायाजी राव विश्वविद्यालय, वडोदरा, गुजरात

अनुवाद

अजीत कुमार, *शोधार्थी,* कला और सौंदर्यशास्त्र संस्थान, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नयी दिल्ली

मधु अग्रवाल, टेकनिया इंस्टीट्यूट ऑफ़ आर्ट एंड डिज़ाइन, नयी दिल्ली

लक्ष्मी पाठक, *पी.जी.टी. पेंटिंग,* जी.डी. गोयनका, वसंतकुंज, नयी दिल्ली

शुचिता शर्मा, *विभागाध्यक्ष,* डिपार्टमेंट ऑफ़ फ़ाइन आर्ट्स, केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, वाराणसी

सुचिता राउत, *विभागाध्यक्ष,* कला विभाग, दिल्ली पब्लिक स्कूल, नीलबड़, भोपाल

सदस्य-समन्वयक

ज्योत्स्ना तिवारी, *प्रोफ़ेसर*, कला एवं सौंदर्यशास्त्र शिक्षा विभाग, रा.शै.अ.प्र.प., नयी दिल्ली

© NCERT not to be republished

आभार

इस पाठ्यपुस्तक के निर्माण में शामिल सभी लोगों और संस्थाओं के प्रति राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् आभार व्यक्त करती है। देश और विदेश के विभिन्न हिस्सों में स्थित सार्वजनिक और निजी संग्रहालयों और संग्रह से चित्रों का उपयोग इस पाठ्यपुस्तक में किया गया है। प्रत्येक चित्र के साथ एक शीर्षक दिया गया है जिसमें उस चित्र के स्रोत के विवरण का उल्लेख है, जहाँ से चित्र लिए गए हैं। सभी संग्रहालयों की एक सूची निम्नलिखित है।

आगा खान संग्रहालय, कनाडा
इलाहाबाद संग्रहालय, प्रयागराज
भारत इतिहास संशोधक मंडल, पुणे
भारत कला भवन, वाराणसी
ब्रिटिश म्यूज़ियम, लंदन
चेस्टर बीट्टी लाइब्रेरी, डबलिन
छत्रपति शिवाजी महाराज वास्तु संग्रहालय, मुंबई
कोल्नाघी गैलरी, लंदन
इंडिया ऑफ़िस लाइब्रेरी, ब्रिटिश लाइब्रेरी, लंदन
लॉस एंजिल्स काउंटी कला संग्रहालय, संयुक्त राज्य अमेरिका
द मेट्रोपॉलिटन म्यूज़ियम ऑफ़ आर्ट, न्यूयॉर्क
म्यूज़ियम ऑफ़ आर्ट्स, वियना
म्यूज़ियम फर इस्लामिस्च कुंस्ट (द म्यूज़ियम ऑफ़ इस्लामिक आर्ट), बर्लिन
एन. सी. मेहता गैलरी, अहमदाबाद
राष्ट्रीय शिल्प संग्रहालय और हस्तकला अकादमी, नयी दिल्ली
नेशनल गैलरी ऑफ़ मॉडर्न आर्ट, नयी दिल्ली
राष्ट्रीय संग्रहालय, नयी दिल्ली
राष्ट्रीय संग्रहालय, प्राग
नेचर मोर्ट गैलरी, नयी दिल्ली
राजा रघुबीर सिंह संग्रह, शांगिरी, कुल्लू घाटी
द सैन डिएगो म्यूज़ियम ऑफ़ आर्ट, कैलिफ़ोर्निया
स्मिथसोनियन इंस्टीट्यूशन, वाशिंगटन डी. सी.
विक्टोरिया और अल्बर्ट संग्रहालय, लंदन
विक्टोरिया मेमोरियल हॉल, कोलकाता
विश्वभारती विश्वविद्यालय, शांतिनिकेतन

© NCERT not to be republished

परिषद्, प्रज्ञा वर्मा, *उप सचिव* (अकादमिक), केंद्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड; सतीश कुमार, *शोधकर्ता*, कला और सौंदर्यशास्त्र संस्थान, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नयी दिल्ली; तथा प्रीति प्रिया, *जूनियर प्रोजेक्ट फ़ेलो,* कला एवं सौंदर्यशास्त्र शिक्षा विभाग, रा.शै.अ.प्र.प. नयी दिल्ली; का पाठ्यपुस्तक के निर्माण के दौरान सहायता प्रदान करने के लिए आभार प्रकट करती है।

इसके साथ पाठ्यपुस्तक की समीक्षा करने के लिए परिषद् शशि चढ्ढा, *सहायक संपादक* (सेवानिवृत्त) और ममता गौड़, *संपादक* (संविदा) का आभार व्यक्त करती है।

परिषद्, पाठ्यपुस्तक की समीक्षा और संपादन के लिए कहकशा, *सहायक संपादक* (संविदा) और मीनाक्षी, *सहायक संपादक* (संविदा) का आभार व्यक्त करती है। परिषद्, नरेश कुमार, *डी.टी.पी. ऑपरेटर* और नितिन कुमार गुप्ता, *डी.टी.पी. ऑपरेटर* का भी आभार व्यक्त करती है।

© NCERT not to be republished

विषय सूची

आमुख — *iii*
प्राक्कथन — *v*

1. पांडुलिपि चित्रकला की परंपरा — 1
2. राजस्थानी चित्रकला शैली — 10
3. मुगलकालीन लघु चित्रकला — 35
4. दक्कनी चित्रकला शैली — 55
5. पहाड़ी चित्रकला शैली — 67
6. बंगाल स्कूल और सांस्कृतिक राष्ट्रवाद — 85
7. आधुनिक भारतीय कला — 99
8. भारत की जीवंत कला परंपराएँ — 127

शब्दकोश — 145
ग्रंथ सूची — 151

© NCERT not to be republished

पांडुलिपि चित्रकला की परंपरा 1

पाँचवीं शताब्दी में रचित *विष्णुधर्मोत्तर पुराण* के तीसरे खंड में 'चित्रसूत्र' नामक अध्याय को भारतीय कला और विशेषकर चित्रकला की स्रोत पुस्तक के रूप में स्वीकार किया गया है। यह अध्याय आकृति बनाने की कला से संबंधित है, जिसे 'प्रतिमा लक्षण' कहते हैं, जो कि चित्रकला के धर्मसूत्र हैं। इसी खंड में तकनीक, उपकरण, सामग्रियों, सतह (दीवार या भित्ति), धारणा, परिप्रेक्ष्य और मानव आकृतियों के त्रि-आयामों की संरचना का उल्लेख किया गया है। चित्रण के विभिन्न अंग, जैसे— रूप-भेद या दृश्य और आकार, प्रमाण या परिमाप; अनुपात और संरचना; भाव या अभिव्यंजना; लावण्य योजना या सौंदर्य रचना; सदृश और वार्णिकभंगा या तूलिका और रंगों के उपयोग की विस्तारपूर्वक उदाहरण सहित व्याख्या की गई है। इनमें से प्रत्येक के कई उप-भागों का भी उल्लेख किया गया है। कई शताब्दियों से इन धर्मसूत्रों को कलाकारों द्वारा पढ़ा, समझा और अनुसरण किया जाता रहा है। इस प्रकार यह चित्रकला की सभी भारतीय शैलियों और चित्रशालाओं का आधार बना।

मध्यकाल की चित्रकला को उनके अपेक्षाकृत छोटे आकार के कारण 'लघु चित्रकारी' के नाम से जाना गया। छोटे आकार का होने के कारण इन लघु चित्रकारियों का हाथों में लेकर करीब से अवलोकन किया जाता था। कला संरक्षकों के महलों या राजदरबारों की दीवारों को अकसर भित्ति चित्रों से सजाया जाता था। इसलिए इन लघु चित्रों का उद्देश्य कभी भी दीवारों पर प्रदर्शित करना नहीं होता था।

चित्रकला का एक बड़ा वर्ग पांडुलिपि चित्रण के नाम से जाना जाता है, जिनमें महाकाव्यों के काव्य छंदों और विभिन्न विहित, साहित्यिक, संगीत ग्रंथों (पांडुलिपियाँ) का चित्रण किया गया है। चित्रपट के शीर्ष भाग पर हस्तलिखित छंद को स्पष्ट रूप से सीमांकित आयताकार स्थानों में लिखा जाता था। कभी-कभी विषयवस्तु को लेखचित्र के मुख्य पृष्ठ पर न लिखकर पीछे की तरफ़ लिखा जाता था।

पांडुलिपि चित्रण को व्यवस्थित रूप से विषय अनुसार विभिन्न भागों में रचित किया गया था (प्रत्येक भाग में कई बंधनमुक्त चित्र या पर्ण या पृष्ठ शामिल होते थे)। चित्रकला के प्रत्येक पर्ण (फ़ोलियो) का संबंधित लेख, उस चित्र के ऊपरी भाग के सीमांकित स्थान पर या उसके पीछे अंकित किया गया

12148CH01

© NCERT not to be republished

था। तद्नुसार, किसी के पास *रामायण, भागवत पुराण, महाभारत, गीत गोविंद, रागमाला* आदि के चित्रों का संकलन होगा। प्रत्येक संग्रह को कपड़े के टुकड़े से लपेटकर, राजा या संरक्षक के पुस्तकालय में एक गठरी या पोटली के रूप में संग्रहित किया जाता था।
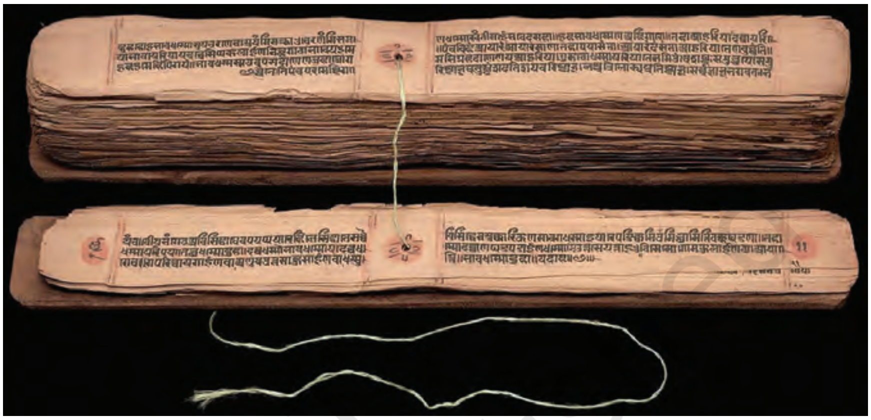
मेवाड़ के विजयसिंह का श्रावकप्रतिक्रमसूत्र कर्णी— कमलचंद्र द्वारा लिखित, 1260, संग्रह, बोस्टन

संग्रह का सबसे महत्वपूर्ण पर्ण-पृष्ठ (फ़ोलियो पृष्ठ) पुष्पिका पृष्ठ (कोलोफ़ोन पृष्ठ) होता है, जिसमें संरक्षक के नाम की जानकारी, कलाकार या लेखक, तिथि और संग्रह बनाने का स्थान या कार्य या चित्रण पूरा होने की तिथि और इस तरह का अन्य महत्वपूर्ण विवरण लिखा जाता था।

हालाँकि, समय के साथ, पुष्पिका पृष्ठ लुप्त या नष्ट हो चुके हैं। विद्वानों ने उनकी विशेषता के आधार पर इनका विवरण किया है। चित्रकला किसी भी तरह की आपदाओं, जैसे— आग, नमी और अन्य आपदाओं के प्रति अतिसंवेदनशील होती है। शिल्पकृतियों को अनमोल और कीमती माना गया है और यह सुवाह्य भी होती थीं, जिन्हें प्राय: राजकुमारियों के विवाह में उपहार के रूप में भेंट किया जाता था। राजाओं व दरबारियों के बीच उपहार और कृतज्ञता के रूप में भी चित्रों और कलाकृतियों का आदान-प्रदान बड़े व्यापक एवं व्यावहारिक तौर पर होता था। चित्र तीर्थयात्रियों, भिक्षु, साहसी खोजकर्ता, व्यापारी और पेशेवर कथावाचक के साथ दूरदराज़ के क्षेत्रों में ले जाए जाते थे। उदाहरणस्वरूप, बूँदी के राजा के पास मेवाड़ के चित्रों का संग्रह या इसके विपरीत मेवाड़ के राजा के संग्रह में बूँदी के चित्र मिल सकते हैं।

चित्रकलाओं के इतिहास का पुनर्निर्माण एक अभूतपूर्व कार्य है। दिनांकित की तुलना में अदिनांकित कलाकृतियाँ कम हैं। कालानुक्रमिक रूप से व्यवस्थित करने पर, इनके मध्य कई स्थान रिक्त हैं जिसके बारे में किसी के भी द्वारा इस तरह के चित्रण के विकास या समृद्धि या गतिविधि का अनुमान लगाया जा सकता है। स्थिति की जटिलता तब अधिक बढ़ जाती है, जब ये बिखरे पृष्ठ अपने मूल

© NCERT not to be republished

भाग का हिस्सा न रहकर विभिन्न संग्रहालयों और निजी संग्रहों में बिखर गए, जो इधर-उधर समय-समय पर देखने को मिलते हैं। ये परिभाषित समय को चुनौती देते हैं और विद्वानों को पुनः कालक्रम में संशोधन करने और उसे पुनर्परिभाषित करने के लिए विवश करते हैं। इस प्रकार अदिनांकित चित्रकलाओं के समूहों को उनकी शैली के आधार और अन्य परिस्थितिजन्य साक्ष्यों के आधार पर वर्गीकृत किया जाता रहा है।

पश्चिम भारतीय चित्रकला शैली

भारत के पश्चिमी भाग में जो चित्रकला शैली फली-फूली, उसे 'पश्चिम भारतीय चित्रकला' के नाम से जाना जाता है। गुजरात इसका प्रमुख केंद्र था। इसके साथ-साथ राजस्थान का दक्षिणी भाग और मध्य भारत का पश्चिमी भाग भी इसमें सम्मिलित है। गुजरात में अनेक महत्वपूर्ण बंदरगाह होने के कारण इस भू-भाग से अनेक व्यापारिक मार्ग जाते थे। परिणामस्वरूप यहाँ अनेक संपन्न व्यापारी व स्थानीय सामंत प्रमुख हुए, जो आर्थिक संपन्नता के कारण, कला के भी सशक्त संरक्षक बने। मुख्य रूप से जैन समुदाय के व्यापारी वर्ग ने जैन धर्म के विषयों को संरक्षित किया। जैन विषयों और पांडुलिपियों पर आधारित पश्चिम भारतीय शैली का यह भाग जैन चित्रकला के नाम से जाना जाता है।

शास्त्र दान की परंपरा के कारण जैन शैली के विकास को और प्रोत्साहन मिला। जैन समुदाय में, सचित्र पांडुलिपि को मठ के पुस्तकालय, जिसे भंडार कहा जाता था, में दान करना एक परोपकार, सदाचार व धार्मिक कृत्य माना जाता था।

महावीर का जन्म, कल्पसूत्र, पन्द्रहवीं शताब्दी, जैन भंडार, राजस्थान

कल्पसूत्र जैन परंपरा का सर्वाधिक लोकप्रिय चित्र ग्रंथ है। इसके एक भाग में जैन धर्म के चौबीस तीर्थंकरों के जन्म से लेकर निर्वाण तक की विविध घटनाओं का वर्णन किया गया है, जो कलाकारों को उनके जीवन चरित्र को चित्रित करने के लिए विषय प्रदान करता है। उनके जीवन की पाँच प्रमुख घटनाओं को विशेष रूप से प्रस्तुत किया गया है, — गर्भाधान, जन्म, गृहत्याग, ज्ञान प्राप्ति व प्रथम उपदेश

© NCERT not to be republished

महावीर के गर्भाधान के समय उनकी माता त्रिशला ने 14 वस्तुओं को स्वप्न में देखा। ये 14 वस्तुएँ थीं— हाथी, बेल, शेर, देवी लक्ष्मी, कलश, पालकी, सरोवर, छोटी नदी, अग्नि, ध्वज, माला, रत्नों का ढेर, सूर्य एवं चन्द्रमा। उन्होंने अपने सपने के बारे में एक ज्योतिषी से बात की। ज्योतिषी ने बताया कि वे एक ऐसे पुत्र को जन्म देंगी जो या तो राजाध्यक्ष होगा अथवा एक महान संत और गुरु होगा।

और महानिर्वाण—तीर्थंकरों के जीवन से संबंधित अन्य घटनाओं के अधिकतम भाग *कल्पसूत्र* में शामिल हैं।

त्रिशला के 14 स्वप्न, कल्पसूत्र, पश्चिमी भारत

लोकप्रिय चित्रित ग्रंथों में *कालकाचार्यकथा* और *संग्राहिणी सूत्र* उल्लेखनीय हैं। *कालकाचार्यकथा* में आचार्य कालका की कहानी का वर्णन है, जो एक दुष्ट राजा से अपनी अपहृत बहन (एक जैन तपस्विनी) को बचाने पर आधारित है। यह विभिन्न रोमांचकारी घटनाक्रम और कालका की रोमांचपूर्ण यात्रा को प्रस्तुत करता है, जैसे— वह अपनी लापता बहन का पता लगाने के लिए भूमि का परिमार्जन कर रहे हैं, अपनी जादुई शक्तियों का प्रदर्शन, अन्य राजाओं के साथ संबंध स्थापित करते हुए और अंत में, दुष्ट राजा से युद्ध कर रहे हैं।

उत्तरायण सूत्र में महावीर की शिक्षाओं का वर्णन है, जहाँ भिक्षुओं के आचार संहिता का पालन करने का वर्णन किया गया है। वहीं *संग्राहिणी सूत्र* एक ब्रह्मांड संबंधी ग्रंथ है, जिसकी रचना बारहवीं शताब्दी में की गई थी, जिसमें ब्रह्मांड की संरचना और अंतरिक्ष के बारे में अवधारणाएँ शामिल हैं।

जैनियों ने इन ग्रंथों की कई प्रतियाँ लिखवाईं। इन ग्रंथों में या तो बहुत कम अथवा अत्यधिक चित्र मिलते हैं। इस प्रकार, एक विशिष्ट पृष्ठ पोथी या चित्र को लेखन और चित्रण के लिए वर्गों में विभाजित किया जाता था। पांडुलिपि या

© not to be republished

इस चित्र में कालका को दाहिनी ओर नीचे और उनकी बंदी बनाई गई बहन को बायीं ओर ऊपर दिखाया गया है। जादुई शक्ति वाले गधे को कालका की सेना पर मुँह से बाणों की वर्षा करते हुए दिखाया गया है। दुष्ट राजा को वृत्त के अंदर से नेतृत्व करते हुए दिखाया गया है।

कालकाचार्यकथा,
1497, एन. सी. मेहता संग्रह,
अहमदाबाद, गुजरात

पोथी चित्र के पृष्ठों को एक साथ जोड़ने के लिए ऊपर और नीचे पटलिस नामक लकड़ी के आवरण का उपयोग किया जाता था और जोड़ने के लिए एक छोटा-सा छेद बनाया जाता था जिससे उसे एक डोर के द्वारा बाँध दिया जाता था ताकि वे संरक्षित रहें।

चौदहवीं शताब्दी में कागज़ के आने से पहले, प्रारंभिक जैन चित्रकला, परंपरागत रूप से ताड़ के पत्तों पर बनायी जाती थी। भारत के पश्चिमी भाग से प्राप्त ताड़ के पत्ते की सर्वप्रथम पांडुलिपि, ग्यारहवीं शताब्दी की है। ताड़ के पत्तों को चित्रण से पहले तैयार किया जाता था और तेज़ नुकीले सुलेख उपकरण के उपयोग से पत्तियों पर लेखन का कार्य कुशलता से किया जाता था।

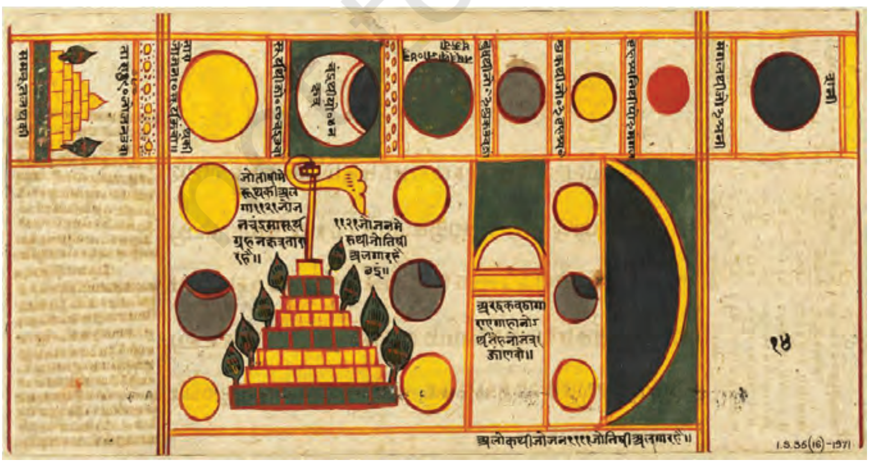

ग्रह और उनके बीच की दूरी,
संग्रहिणी सूत्र,
सत्रहवीं शताब्दी, एन.सी. मेहता,
अहमदाबाद, गुजरात

© NCERT not to be republished

ताड़ के पत्तों पर संकीर्ण और छोटे स्थान के कारण, आरंभ में चित्रण मात्र पटलिस तक ही सीमित था, जहाँ देवी-देवताओं की आकृतियों और जैन आचार्यों के जीवन से जुड़ी घटनाओं का चित्रण चमकदार रंगों से किया जाता था।

जैन चित्रकला में विशेष प्रकार के संयोजन (योजनाबद्ध) और सरलीकृत भाषा का विकास हुआ, अधिकांश चित्रों में विभिन्न घटनाओं को समायोजित करने के लिए चित्र पटल को वर्गों में विभाजित किया गया। चित्रों में चमकीले रंग और कपड़े के अलंकरण का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। संयोजन में पतली, लहरदार रेखाओं का प्रबल प्रभाव है और चेहरे को तीन-आयामों में दर्शाने के लिए एक अतिरिक्त आँख का उपयोग देखने को मिलता है। चित्रों में वास्तुशिल्प में सल्तनत कालीन गुंबद और नुकीले मेहराब का चित्रण, गुजरात, मांडू, जौनपुर और पाटन के क्षेत्रों में सुल्तानों की राजनीतिक उपस्थिति को दर्शाते हैं, जहाँ ये चित्र बने। कपड़े के चंदवा या शामियानों और पर्दों, मेज़, कुर्सी आदि वेशभूषा, उपयोगी वस्तुओं इत्यादि पर स्वदेशी और स्थानीय जीवन शैली का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखता है। भू-दृश्य या प्रकृति-दृश्य के स्वरूपों का चित्रण विस्तृत रूप में न होकर मात्र सांकेतिक या साधारणत: किया गया है। लगभग 1350–1450 के सौ वर्षों की अवधि को जैन चित्रकला का सबसे रचनात्मक काल माना जाता है। चित्रों की संरचना में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन का अनुभव किया जा सकता है, जहाँ प्रबल रूप से देवी-देवताओं के साथ आकर्षक रूप से चित्रित, भू-दृश्य या प्रकृति-दृश्य, नृत्य करती मानव आकृतियाँ और वाद्ययंत्र बजाते संगीतकारों का चित्रण मुख्य चित्र के हाशिये पर किया गया है।

इंद्र द्वारा देवसानो पाड़ो की स्तुति कल्पसूत्र, गुजरात, लगभग 1475, संग्रह, बोस्टन

इन चित्रों को स्वर्ण और लाजवर्त के प्रचुर उपयोग से चित्रित किया गया है, जो इन चित्रों के निर्माणकर्ता या संरक्षकों की संपन्नता और सामाजिक स्थिति को दर्शाता है।

इन धार्मिक ग्रंथों के अतिरिक्त, *तीर्थपट*, *मंडल*, और *गैर-धार्मिक* कहानियों को भी जैन समुदाय के लिए चित्रित किया जाता था।

जैन चित्रों के अतिरिक्त, इनका निर्माण या संरक्षण धनी व्यापारियों और समर्पित भक्तों द्वारा करवाया जाता था। पन्द्रहवीं और सोलहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध

में सामंतों, ज़मींदारों, धनी नागरिकों और ऐसे अन्य लोगों के बीच चित्रकला की एक समानांतर परंपरा मौजूद थी, जिसमें धर्मनिरपेक्ष, धार्मिक और साहित्यिक विषयों के चित्रण शामिल थे। यह चित्रकला स्वदेशी परंपरा का प्रतिनिधित्व करती है, जिनका निर्माण राजस्थान के राजदरबार की शैलियों और मुगलों के प्रभाव के आने से पहले हुआ था।

इसी समय में, हिंदू और जैन विषयों के अनेक चित्रों को चित्रित किया गया जैसे— महापुराण, चौरपंचाशिका, महाभारत का अरण्यक पर्व, भागवत पुराण, गीत गोविंद और अन्य कुछ चित्रांकन, जो इस स्वदेशी शैली का प्रतिनिधित्व करते हैं। इस काल और शैली को साधारण रूप से पूर्व-मुगल या पूर्व-राजस्थानी शैली के रूप में भी जाना जाता है, जिसे स्वदेशी शैली भी कहा जा सकता है।

चौरपंचाशिका, गुजरात, पन्द्रहवीं शताब्दी, एन. सी. मेहता संग्रह, अहमदाबाद, गुजरात

इसी काल के दौरान इन चित्रों के समूह में एक विशिष्ट शैली का विकास हुआ। इनमें मानव संरचना की एक विशेष शैली का विकास देखने को मिलता है, साथ ही साथ पारदर्शी वस्त्रों के चित्रण में विशिष्ट रुचि दृष्टिगोचर होती है। नायिका के सिर पर गुब्बारे की तरह से ओढ़नी का चित्रण है, जिसे कड़े और नुकीले किनारों की तरह ढाँका गया है। वास्तुकला का चित्रण प्रासंगिक परंतु सांकेतिक है। विभिन्न प्रकार की रेखाओं से जल निकायों और विशेष रूप से क्षितिज, वनस्पतियों, जीवों आदि का चित्रण किया गया है। ये सभी औपचारिक तत्व, सत्रहवीं शताब्दी की आरंभिक राजस्थानी चित्रकला को प्रभावित करते हैं।

मीठाराम, भागवत पुराण, 1550

उत्तर, पूर्व और पश्चिम के कई क्षेत्रों पर बारहवीं शताब्दी के अंत में मध्य एशिया के सल्तनत राजवंशों के शासन में आने के बाद, स्पष्टत:

not to be published

निमतनामा, मांडू, 1550, ब्रिटिश लाइब्रेरी, लंदन

फ़ारसी, तुर्क और अफ़गान के प्रभाव को चित्रों में देखा जा सकता है। विशेष रूप से उन क्षेत्रों में, जहाँ सुल्तानों द्वारा चित्रों का निर्माण करवाया गया, जैसे कि मालवा, गुजरात, जौनपुर और अन्य सल्तनत शासित क्षेत्र। इन राजदरबारों में कुछ मध्य एशियाई कलाकारों के साथ स्थानीय कलाकारों द्वारा चित्रों के निर्माण से, स्वदेशी शैलियों और फ़ारसी शैलियों के परस्पर मिश्रण से एक नई शैली का उदय हुआ, जिसे सल्तनत चित्रकला के रूप में जाना जाता है।

यह एक शैली की तुलना में पद्धति का अधिक प्रतिनिधित्व करता है, जिस पर फ़ारसी मिश्रण का प्रभाव है— स्वदेशी चित्रण पद्धति, चित्तरंजक रूप से स्वदेशी तत्वों के साथ, फ़ारसी तत्वों, जैसे कि रंग, शरीर-रचना, अलंकरण सूक्ष्मता के साथ सरल प्राकृतिक दृश्य या भू-दृश्य इत्यादि एक साथ दिखाई दे रहे हैं।

नासिर शाह खिलजी (1500–10 ई.) के शासन काल के दौरान मांडू में चित्रित, *निमतनामा* (पकवानों की किताब) इस शैली का सर्वोत्तम उदाहरण है। यह व्यंजनों की पुस्तक है, जिसके एक खंड में शिकार का भी उल्लेख किया गया है। इसके साथ ही साथ दवाओं, सौंदर्य प्रसाधन, इत्र के निर्माण और उनके उपयोग के दिशानिर्देश भी दिए गए हैं।

सूफ़ी विचारों पर आधारित कहानियाँ और लौराचंदा चित्रकला इस पद्धति के उदाहरण हैं।

पाल चित्रकला शैली

जैन साहित्य एवं चित्रकला की भाँति पूर्वी भारत के पाल शासकों के समय में लिखित सचित्र पांडुलिपियाँ, ग्यारहवीं और बारहवीं शताब्दी की आरंभिक चित्रकला के उदाहरण हैं। पाल काल (750 से बारहवीं शताब्दी के मध्य) बौद्ध कला का अंतिम प्रमुख काल था। नालन्दा एवं विक्रमशिला जैसे महाविहार (विश्वविद्यालय) बौद्ध ज्ञान एवं कला के महान केंद्र थे। यहाँ पर बौद्ध धर्म से संबंधित असंख्यक पांडुलिपियाँ एवं वज्रयान बौद्ध देवी-देवताओं के चित्र ताड़पत्र पर चित्रित किए गए।

इन केंद्रों में कांस्य मूर्तियों की ढलाई के लिए भी कार्यशालाएँ थीं। दक्षिण-पूर्व एशिया के छात्र और तीर्थ यात्री शिक्षा और धार्मिक शिक्षा के लिए इन केंद्रों या

© NCERT not to be republished

महाविहार (विश्वविद्यालयों) में आए और पालकालीन बौद्ध कला के कांस्य और सचित्र पांडुलिपियों के नमूने अपने साथ वापस ले गए। इस प्रथा ने पाल कला का विभिन्न स्थानों उदाहरणस्वरूप नेपाल, तिब्बत, बर्मा, श्रीलंका और जावा देशों में सुगमता से प्रसार किया।

लोकेश्वर, अष्टसहस्त्रिका प्रज्ञापारामिता, पाल, 1050, राष्ट्रीय संग्रहालय, नयी दिल्ली

जैन चित्रकला की कोणीय रेखाओं के विपरीत लयात्मक एवं प्रवाहमान रेखाएँ तथा हलकी रंग योजना पाल शैली की चित्रकला की प्रमुख विशेषताएँ हैं। अजन्ता की तरह, पाल शैली में मठों में मूर्तिकला पद्धति और चित्रों में समांतर कला शैली का अनुभव होता है। *अष्टसहस्त्रिका प्रज्ञापारामिता'* (बौदलेन लाइब्रेरी, ऑक्सफोर्ड) या आठ हज़ार पंक्तियों में लिखी गई बुद्धिमत्ता की पूर्णता ताड़पत्र पर निर्मित पालकालीन बौद्ध पांडुलिपि का एक श्रेष्ठ उदाहरण है।

इस पोथी का चित्रण नालन्दा विश्वविद्यालय में, पाल शासक रामपाल के पंद्रहवें राजवर्ष अर्थात् ग्यारहवीं शताब्दी के अंतिम तिमाही में हुआ। इसमें छह पृष्ठ चित्रित हैं एवं दोनों ओर चित्रित लकड़ी के आवरण हैं। ये आवरण पांडुलिपि के पृष्ठों के ऊपर-नीचे लगाकर फीते से बाँधे जाते थे ताकि पांडुलिपि सुरक्षित रहे।

मुस्लिम आक्रमणकारियों के आगमन के पश्चात् पाल राजवंश कमज़ोर होता गया। अंततोगत्वा तेरहवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में पाल कला का अंत हो गया, जब मुस्लिम आक्रमणकारियों ने बौद्ध विहारों को नष्ट कर दिया।

अभ्यास

1. पांडुलिपि चित्रकला क्या है? दो स्थानों का नाम बताएँ जहाँ पांडुलिपि चित्रकला की परंपरा प्रचलित थी?
2. हमारी भाषाओं की पाठ्यपुस्तकों में से किसी एक से एक अध्याय लें तथा चयनित पाठ का सचित्र लेखन करें (न्यूनतम पाँच पृष्ठ)।

© NCERT not to be republished

राजस्थानी चित्रकला शैली 2

12148CH02

राजस्थानी चित्रकला शैली का तात्पर्य चित्रकला की उस शैली से है जो मुख्य रूप से राजस्थान एवं वर्तमान समय के मध्य प्रदेश के कुछ शाही राज्यों एवं ठिकानों में फैली थीं, जैसे— मेवाड़, बूँदी, कोटा, जयपुर, बीकानेर, किशनगढ़, जोधपुर (मारवाड़), मालवा, सिरोही व ऐसी अन्य प्रमुख रियासतें। सोलहवीं शताब्दी के मध्य से उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ के मध्य इस शैली का विकास हुआ।

कलाविद् आनंद कुमारस्वामी ने 1916 में, इसे 'राजपूत चित्रकला' का नाम दिया, क्योंकि इन राज्यों के अधिकांश शासक एवं संरक्षक राजपूत थे। उन्होंने यह नामकरण इन चित्रों को उस समय की मुगल चित्रकला शैली से अलग दिखाने के लिए किया। इसलिए मालवा शैली जिसमें मध्य भारत की रियासतें और पहाड़ी शैली और भारत के उत्तर-पश्चिम हिमालय के पहाड़ी क्षेत्र सम्मलित हैं, को भी उन्होंने राजपूत शैली के ही अंतर्गत रखा। कुमारस्वामी के अनुसार, यह नामकरण चित्रण की स्वदेशी परंपरा का द्योतक है जो यहाँ मुगलों के आगमन के पूर्व से चली आ रही थी। इसके बाद भारतीय चित्रकला के बारे में काफी शोध हुए और समय के साथ राजपूत शैली शब्द का प्रयोग समाप्त हो गया। उसके स्थान पर इसके लिए अब राजस्थानी शैली और पहाड़ी शैली शब्दों का प्रयोग किया जाता है।

यद्यपि इन शैलियों में भौगोलिक दूरी बहुत कम है, लेकिन इनकी उत्पत्ति, विकास व शैली में, सशक्त रेखांकन, रंगों की वरीयता (चमकदार और सौम्य) तथा संयोजन के तत्वों, जैसे— वास्तु, मानवाकृतियाँ, प्रकृति, अंकन की तकनीक, प्रकृतिवाद के लिए आकर्षण और वर्णन विधि आदि में पर्याप्त अंतर परिलक्षित होता है और इन्हीं विशेषताओं से वे एक-दूसरे से अलग अपनी पहचान भी बनाती हैं।

चित्रों का निर्माण सामान्यतया वसली पर किया जाता था। वसली बनाने की अपनी अलग विशिष्ट तकनीक है, जिसमें कागज़ के पतले पन्नों को गोंद से चिपकाकर आवश्यक मोटाई की वसली तैयार की जाती थी। इस प्रकार तैयार वसली पर काले या भूरे रंग से रेखांकन किया जाता था। तत्पश्चात् उसमें आवश्यक रंग भरा जाता था। रंग मुख्य रूप से प्रकृति से प्राप्त खनिज पदार्थों व बहुमूल्य धातुओं, जैसे— सोना व चाँदी से बनाए जाते थे, जिन्हें चिपकाने के लिए गोंद में मिलाया जाता था। ऊँट या गिलहरी के बालों का प्रयोग ब्रुश बनाने के लिए किया जाता था। चित्रण कार्य पूर्ण होने पर अगेट पत्थर से उसे

© NCERT not to be republished

रगड़ा (घुटाई करना) जाता था जिससे चित्र की ऊपरी सतह समतल, चमकदार व ओजपूर्ण हो जाती थी।

चित्रकला एक सामूहिक कार्य होता था जिसका एक कुशल दक्ष कलाकार द्वारा नेतृत्व किया जाता था, जो आरंभिक रेखांकन का कार्य करता था, तत्पश्चात् रंग, छवि चित्रण, वास्तु, भू-दृश्य (प्रकृति) और पशु-पक्षी बनाने में निपुण उसके शिष्य एवं दक्ष कलाकार अपना-अपना कार्य पूरा करते थे। अंत में प्रधान कलाकार चित्र को अंतिम रूप देता था। सुलेखक निर्धारित स्थान पर संबंधित श्लोक या पद लिखता था।

चित्रकला के विषय— एक समीक्षा

सोलहवीं शताब्दी तक राम और कृष्ण से संबंधित वैष्णव संप्रदाय भक्ति आंदोलन के रूप में पश्चिम, उत्तर व मध्य भारत में लोकप्रिय हो चुका था, आगे चलकर यह पूरे भारतीय उपमहाद्वीप में फैल गया, जिसमें कृष्ण विशेष लोकप्रिय हुए। उनकी उपासना केवल ईश्वर के रूप में ही नहीं, बल्कि एक आदर्श प्रेमी के रूप में भी की जाने लगी। प्रेम की धारणा को धार्मिक विषय के रूप में पोषित किया जाता था, जहाँ भावना और रहस्यवाद का एक मनोहारी समन्वय प्राप्त होता था। कृष्ण को

वन में कृष्ण और गोपियाँ, गीत गोविंद, मेवाड़, 1550, छत्रपति शिवाजी महाराज वास्तु संग्रहालय, मुंबई

सृष्टिकर्ता माना गया जिनसे सारी सृष्टि की रचना हुई और राधा, मानवीय आत्मा की प्रतीक, अपने को उनमें समाहित होने को उद्दत हैं। गीत गोविंद चित्रकला में, आत्मा की परमात्मा के प्रति भक्ति, राधा द्वारा अपने प्रिय कृष्ण के आत्मत्याग द्वारा चित्रित किया गया है।

गीत गोविंद की रचना जयदेव द्वारा बारहवीं शताब्दी में की गई। ऐसा माना जाता है कि वे बंगाल के राजा लक्ष्मण सेन के दरबारी कवि थे। *गीत गोविंद* ग्वालों का गीत संस्कृत का एक काव्य है, जिसमें शृंगार रस की प्रधानता है। इसमें राधा-कृष्ण के आध्यात्मिक प्रेम को भौतिक रूप में दिखाया गया है। भानुदत्त ने चौदहवीं शताब्दी में कलाकारों के एक और अन्य प्रिय संस्कृत ग्रंथ *रसमंजरी* की रचना की। भानुदत्त बिहार के रहने वाले मैथिल ब्राह्मण थे। *रसमंजरी* का अर्थ है— आनंद का गुलदस्ता। इस संस्कृत ग्रंथ में रसों के वर्णन के साथ-साथ नायक (पुरुष) एवं नायिकाओं (स्त्री) के भेद का भी विवरण मिलता है, जैसे— उम्र के अनुसार— बाल, तरुण और प्रौढ़; आंगिक विशेषताओं के अनुसार— पद्मिनी, चित्रिणी, शंखिनी, हस्तिनी आदि; भावगत विशेषताओं के अनुसार— खंडित, वासकसज्जा, अभिसारिका व उत्का आदि। यद्यपि इस ग्रंथ में कृष्ण का उल्लेख नहीं हुआ है, फिर भी चित्रकारों ने उन्हें प्रतिनिधि (आदर्श) प्रेमी के रूप में चित्रित किया है।

रसिकप्रिया का अर्थ है— रसिक या पारखी को आनंदित करने वाला। यह जटिल काव्यगत विवेचनों से परिपूर्ण है और इसकी रचना अभिजात्य दरबारियों के सौंदर्यबोध के उद्दीपन के लिए की गई। ब्रजभाषा में रचित *रसिकप्रिया* के रचनाकार केशवदास थे। जो 1591 में ओरछा के राजा मधुकर शाह के दरबारी कवि थे। *रसिकप्रिया* में अनेक प्रेरक अवस्थाओं का उल्लेख हुआ है, जैसे— प्रेम, मिलन, वियोग, ईर्ष्या, विवाद और इसके परिणामस्वरूप प्रेमी-प्रेमिकाओं में होने वाली अनबन, गुस्सा जैसी अवस्थाओं की अभिव्यक्ति राधा-कृष्ण के माध्यम से दर्शाई गई है।

कविप्रिया, केशवदास द्वारा राय परबीन के सम्मान में रचित एक अन्य काव्य है। राय परबीन ओरछा की एक प्रसिद्ध गणिका थी। यह एक प्रेमकथा है, लेकिन इसके दसवें अध्याय में 'बारहमासा' नामक प्रकरण है, जिसमें साल के बारह महीनों जलवायु या मौसम का सटीक वर्णन हुआ है। अलग-अलग महीनों के मौसम में लोगों के दैनिक जीवन का वर्णन करते हुए उसमें आने वाले त्यौहारों का भी उल्लेख किया गया है। केशवदास ने यह भी उल्लेख किया है कि कैसे नायिका नायक को राज़ी करती है कि वह उसे छोड़कर अपने गंतव्य की ओर अग्रसर ना हो।

बिहारी सतसई, के रचनाकार बिहारीलाल हैं; इसमें सात सौ (सतसई) पद्य हैं, जिनकी रचना सूक्ति एवं नैतिक हाज़िरजवाबी के रूप में की गई है। ऐसा माना जाता है कि उन्होंने इसकी रचना 1667 ई. के आसपास की, जब वे जयपुर के राजदरबार

© NCERT not to be republished

में मिर्ज़ा राजा जय सिंह के लिए कार्य कर रहे थे, क्योंकि *सतसई* की कई सूक्तियों में संरक्षक का नाम आया है। *बिहारी सतसई* का चित्रण मेवाड़ में अधिक हुआ है, साथ ही साथ पहाड़ी शैली में भी इसका चित्रण हुआ है।

रागमाला चित्रकला रागों और रागिनियों की चित्रात्मक अभिव्यक्ति है।

संगीतज्ञों एवं कवियों द्वारा परंपरागत रूप में रागों को प्रेम एवं भक्ति के प्रसंगों में, दैवीय या मानवीय रूप में देखा गया। प्रत्येक राग एक विशेष अवस्था, दिन के प्रहर (समय) और ऋतु से जोड़ा गया है। रागमाला चित्रकला में सामान्यतया 36 या 42 चित्रित पृष्ठ हैं। ये एक परिवार के रूप में दिखाए गए हैं। प्रत्येक परिवार का मुखिया एक पुरुष राग होता है और स्त्री के रूप में छह रागिनियाँ होती हैं। छह मुख्य राग— भैरव, मालकोस, हिंडोल, दीपक, मेघ और श्री हैं।

चारण (किंवदंती) और अन्य प्रेमाख्यान, जैसे— *ढोलामारू*, *सोनी-महिवाल*, *मृगावत*, *चौरपंचाशिका* और *लौरचंदा* जैसे साहित्य भी कलाकारों के प्रिय विषय थे। *रामायण*, *भागवतपुराण*, *महाभारत*, *देवी महात्म्य* और इस प्रकार के अन्य साहित्य भी सभी शैली के कलाकारों के पसंदीदा विषय थे।

इनके अतिरिक्त, दरबार के दृश्य एवं ऐतिहासिक घटनाओं पर भी प्रचुर संख्या में चित्र बनाए गए हैं, जिनमें— शिकार, युद्ध एवं विजय, उत्सव, वनमोज, नृत्य, संगीत, त्यौहार, वैवाहिक उत्सव, राजाओं के छवि चित्रण, दरबारी एवं परिवार के सदस्यगण, शहरी जीवन एवं पशु-पक्षियों के चित्र हैं।

चौरपंचाशिका, मेवाड़, 1500, एन. सी. मेहता संग्रह, अहमदाबाद, गुजरात

© NCERT not to be republished

मालवा चित्रकला शैली

मालवा शैली सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दी में फली-फूली और यह शैली हिंदू राजपूत दरबार का प्रतिनिधित्व करती है। इसकी द्वि-आयामी सपाट एवं सरल भाषा, जैन पांडुलिपियों से *चौरपंचाशिका* पांडुलिपि चित्रों की शैलीगत विकास की पूर्णता की परिणति है।

राग मेघा,
माधो दास, मालवा, 1680,
राष्ट्रीय संग्रहालय, नयी दिल्ली

राजस्थानी शैली की उत्पत्ति एवं विकास एक निश्चित प्रादेशिक भू-भाग और उनके शासकों के संरक्षण में हुई, वहीं इसके विपरीत मालवा शैली किसी एक निश्चित क्षेत्र में उत्पन्न नहीं हुई और यह मध्य भारत के बड़े भू-भाग में फैली। वहाँ यह छिट-पुट रूप में मांडू, नुसरतगढ़ और नरस्यंग सहर में व्यक्त हुई। कुछ प्रारंभिक तिथियुक्त समूह में *अमरू शतक* को काव्यात्मक रूप से चित्रित किया जाता है, जिसका समय 1652 ई. है। माधो दास द्वारा 1680 ई. में नरस्यंग शहर में राग मेघा चित्रकला को चित्रित किया गया। एक बड़ी संख्या में मालवा शैली के चित्र दतिया महल के संग्रह से प्राप्त हुए हैं। अत: संकलित चित्र बुंदेलखंड को चित्रकला का केंद्र होने का समर्थन करते हैं। लेकिन दतिया महल के भित्ति चित्रों में मुगल प्रभाव चुनौती देते हैं। जो कागज़ पर बने चित्रों के एकदम विपरीत हैं जो शैलीगत रूप से स्वदेशी एवं सादगीपूर्ण हैं। इस शैली में राजकीय संरक्षकों एवं छवि चित्रण का पूर्ण अभाव इस अवधारणा का प्रमाण है कि दतिया के राजाओं ने इन चित्रों को घुमंतु कलाकारों से खरीदा होगा, जिन्होंने जन सामान्य में प्रचिलित विषयों— *रामायण*, *भागवतपुराण*, *अमरू शतक*, *रसिकप्रिया*, *रागमाला* और बारहमासा आदि पर चित्र बनाए होंगे।

सोलहवीं शताब्दी में दिल्ली, आगरा, फतेहपुर सिकरी व लाहौर के दरबार का मुगल शैली पर प्रभाव बढ़ा। प्रांतीय मुगल शैली देश के अनेक भागों में काफी समृद्ध अवस्था में थी। ये मुगल शासन के अंतर्गत तो आते थे, लेकिन शासन कार्य मुगल सम्राटों द्वारा नियुक्त शक्तिशाली एवं संपन्न अधिकारियों द्वारा संचालित होता था। ऐसे स्थानों पर मुगल शैली और विशिष्ट स्थानीय तत्वों से युक्त एक अलग चित्रकला शैली प्रचलित हुई। दक्कन शैली अहमदनगर, बीजापुर, गोलकोंडा और हैदराबाद जैसे केंद्रों में विकसित हुई। इसके बाद सत्रहवीं एवं अठारहवीं शताब्दी में पहाड़ी शैली प्रकाश में आई।

© NCERT not to be republished

मेवाड़ चित्रकला शैली

मेवाड़ को राजस्थानी चित्रकला का प्रारंभिक महत्वपूर्ण केंद्र माना जाता है, जहाँ से हमें चित्रकला की एक सतत शैलीगत परंपरा देखने को मिलती है। सत्रहवीं शताब्दी के पूर्व से स्पष्ट व स्वदेशी शैली करण सिंह के मुगल दरबार से संपर्क के कारण अनुवर्ती परिष्कृत एवं उत्कृष्ट शैली के रूप में सामने आई। मुगलों के साथ चले लंबे युद्ध के कारण मेवाड़ शैली के प्रारंभिक चित्र नष्ट हो गए।

मेवाड़ शैली की उत्पत्ति सामान्यतया 1605 ई. में निसारदीन द्वारा चुनार में चित्रित रागमाला चित्रों से मानी जाती है। इन चित्रों के अंतिम पृष्ठ पर दिए विवरण द्वारा उक्त महत्वपूर्ण सूचनाएँ प्राप्त होती हैं। इससे इसके दृश्यगत सौंदर्य का पता चलता है। इसकी सत्रहवीं शताब्दी चित्रकला शैली से काफी समानता है जिसे हम चित्रों के प्रत्यक्ष उपागम, सरल संयोजन, छिट-पुट आलंकारिक विवरण और चटक रंगों के रूप में देख सकते हैं।

राजा जगत सिंह (1928–52) के शासन काल में चित्रों में परिष्कार आया। यह परिष्कार प्रतिभा संपन्न कलाकारों, साहिबदीन और मनोहर के कारण आया, जिन्होंने चित्रकला को जीवंतता प्रदान की और मेवाड़ी चित्रकला की परिभाषा गढ़ी। साहिबदीन ने *रागमाला* (1628), *रसिकप्रिया* व *भागवतपुराण* (1648) और *रामायण के युद्धकांड* (1652) का चित्रण किया। जिसके एक पृष्ठ का विवरण

रामायण का युद्धकांड, साहिबदीन, मेवाड़, 1652, इंडिया ऑफ़िस लाइब्रेरी, लंदन

NCERT not to be republished

मेवाड़ के महाराणा जगत सिंह द्वितीय का शिकार, *1744*, *मेट्रोपॉलिटन म्यूज़ियम ऑफ़ आर्ट, न्यूयॉर्क*

यहाँ दिया गया है। मनोहर का सबसे महत्वपूर्ण कार्य है— *रामायण का बालकांड* (1649)। जगन्नाथ एक अन्य विशिष्ट प्रतिभाशाली कलाकार थे, जिन्होंने 1719 ई. में *बिहारी सतसई* नामक चित्रावली चित्रित की जो मेवाड़ चित्रकला शैली के लिए एक अमूल्य योगदान है। अन्य ग्रंथ, जैसे— *हरिवंश*, *सूरसागर* आदि भी सत्रहवीं शताब्दी की अंतिम तिमाही में सचित्र तैयार कराए गए।

विलक्षण एवं दक्ष चित्रकार साहिबदीन द्वारा चित्रित *रामायण* युद्धकांड का एक अध्याय है। यह सामान्यतया 1652 ई. तक जगत सिंह रामायण के नाम से जानी जाती रही। इस चित्र में साहिबदीन ने एक नवीन चित्रमय युक्ति संयोजन तिर्यक रेखीय परिप्रेक्ष्य को प्रस्तुत किया है, जिसका प्रयोग उन्होंने युद्ध की विभीषिका दिखाने के लिए किया। अनेक वर्णनात्मक तकनीकों का प्रयोग करते हुए कलाकार ने कभी एक से अधिक कथाओं को एक ही पृष्ठ पर एक चित्र के रूप में या एक कथा को अलग-अलग पृष्ठों पर अंकित किया। इस चित्र में युद्ध के समय प्रयुक्त इंद्रजीत के मायावी युद्ध कौशल एवं जादुई हथियारों को चित्रित किया गया है।

अठाहरवीं शताब्दी में चित्रकला का विषय साहित्य से दरबारी क्रियाकलापों एवं शाही मनोरंजन की ओर क्रमशः स्थानांतरित हो गया। मेवाड़ के कलाकारों ने सामान्यतया चटक रंगों का प्रयोग किया है, जिसमें लाल एवं पीले रंगों की प्रधानता है।

सत्रहवीं शताब्दी के अंत में नाथद्वारा जो उदयपुर के समीप है और वैष्णव धर्म का गढ़ था, चित्रशाला के रूप में परिवर्तित हो गया। विभिन्न त्यौहारों के अवसरों पर भगवान श्रीनाथ जी के बड़े-बड़े चित्र, कपड़े पर चित्रित हुए जिन्हें पिछवाई कहा जाता था।

अठाहरवीं शताब्दी में मेवाड़ चित्रकला का स्वरूप धर्मनिरपेक्ष एवं दरबारी होने लगा। अब न केवल छवि चित्रण में चित्रकला का अतिशय उदय हुआ, बल्कि बृहदाकार एवं आकर्षक दरबारी दृश्यों, शिकार के अभियान, उत्सव, अंत:पुर के दृश्य, खेल जैसे विषय विशेष लोकप्रिय हुए।

एक पृष्ठ महाराजा जगत सिंह द्वितीय (1734–52) को चित्रित करता है, जिसमें वे बाज़ का शिकार करने के लिए जाते हुए देश का भ्रमण कर रहे हैं। परिदृश्य का अंकन तिर्यक रूप में हुआ है जिसमें क्षितिज या पीछे का भाग तिर्यक रूप में ऊपर उठता हुआ संयोजित है। परिणामस्वरूप अग्रभाग से हमें अनंत परिदृश्य दिखलाई पड़ता है। दृश्य की प्रासंगिकता घटनाक्रम की जटिलता में निहित है जिसका उद्देश्य घटना को विस्तृत रूप में दिखाना है।

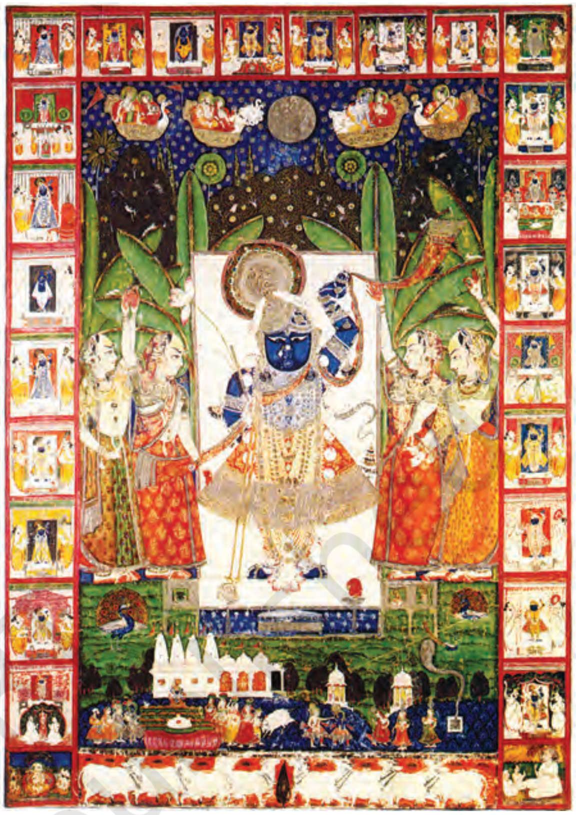

श्रीनाथजी के रूप में कृष्ण शरद पूर्णिमा का त्यौहार मनाते हुए, नाथद्वारा, 1800, राष्ट्रीय संग्रहालय, नयी दिल्ली

बूँदी चित्रकला शैली

बूँदी में सत्रहवीं शताब्दी में एक बहुसर्जनात्मक एवं विशिष्ट चित्रकला शैली का विकास हुआ जो अपनी उत्तम रंग योजना और उत्कृष्ट औपचारिक अभिकल्प के लिए उल्लेखनीय है।

बूँदी रागमाला (1591) को इस शैली की आरंभिक और विकासशील चित्रकला माना जाता है। जिसका चित्रण चुनार में हाड़ा राजपूत शासक भोज सिंह (1585–1607) के शासन काल में हुआ।

बूँदी शैली का विकास विशेष रूप से यहाँ के दो शासकों के संरक्षण में हुआ। राव छत्रर साल (1631–59) जिन्हें मुगल शासक शाहजहाँ ने दिल्ली का वज़ीर नियुक्त किया था और इन्होंने दक्कन विजय में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। दूसरे उनके पुत्र राव भाओ सिंह (1659–82) जो एक उत्साही और भोगालिप्त संरक्षक थे। इनके अनेक छवि चित्र बनाए गए, साथ ही इनके अनेक तिथियुक्त चित्र भी मिलते हैं। इनके उत्तराधिकारी राजा अनिरूद्ध सिंह (1682–1702) के समय में भी इस शैली में रचनात्मक विकास हुआ। बुध सिंह जिनकी दाढ़ी-मूँछ युक्त छवि कई चित्रों में दिखाई देती है, उन्होंने भी इसके विकास में अपना महत्वपूर्ण योगदान

दिया। अनेक राजनैतिक विवादों और चार बार पदच्युत होने के बावजूद चित्रकला के विकास में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका मानी जाती है।

राजा बुध सिंह के पुत्र उमेद सिंह (1749–71) के लंबे शासन काल में चित्रण कार्य कुछ समय के लिए अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया था तथापि उस समय के चित्रों में सूक्ष्म विवरण दिखाने की प्रवृत्ति में काफी निखार व परिष्कार आ गया था। अठारहवीं शताब्दी में बूँदी चित्रकला में कुछ दक्कनी सौंदर्यगत तत्व दिखाई पड़ते हैं, जैसे— चटक व सजीव रंगों के प्रति प्रेम।

उमेद सिंह के उत्तराधिकारी बिशेन सिंह (1771–1821) ने बूँदी पर 48 वर्षों तक शासन किया। वे एक महान कला पारखी थे। उन्हें शिकार का बहुत शौक था और उन्हें अकसर जंगली पशुओं का शिकार और उन पर विजय प्राप्त करते हुए चित्रित किया गया है। उनके उत्तराधिकारी राम सिंह (1821–89) के समय में बूँदी महल को भित्ति चित्रों से अलंकृत किया गया था, जिनमें दरबारी जुलूस, शिकार के दृश्य और कृष्ण से संबंधित कथाओं का विशेष रूप से चित्रण हुआ है। राजमहल में अंकित भित्ति चित्र बूँदी चित्रकला के अंतिम चरण के सुंदरतम उदाहरण हैं।

दीपक राग, चुनार रागमाला, बूँदी, 1519, भारत कला भवन, वाराणसी

बूँदी और कोटा चित्रकला की एक प्रमुख विशेषता है— सघन वनस्पतियों; सुरम्य भू-दृश्य के साथ विविध पेड़-पौधों, जंगली जीवन, पशु-पक्षियों, पहाड़ियों व झरनों का मनोहारी चित्रण। इनके साथ-साथ जीवंत घुड़सवारों और हाथियों का बूँदी और कोटा, दोनों शैलियों में अद्वितीय चित्रण हुआ है। बूँदी कलाकारों के स्त्री सौंदर्य के स्वयं के प्रतिमान थे, जैसे— छोटी ठिगनी कद-काठी, गोल मुखाकृति, पीछे की ओर ढलुआ माथा, तीक्ष्ण नाक, पतली भ्रूरेखा और पतली कमर आदि।

बूँदी शैली के प्रारंभिक चरण में चित्रित रागमाला में फारसी में एक लेख है, जिसके अनुसार इसका चित्रण समय 1591 ई. है, चित्रकारों का नाम शेख हसन, शेख अली और शेख हातिम है जो स्वयं को मुगल दरबार के प्रसिद्ध चित्रकार मीर सैय्यद अली और ख्वाजा अब्दुस्मद का शिष्य बताते हैं। वे चुनार, जो बनारस के पास स्थित है, उसे चित्रकला के उद्भव का स्थान बताते हैं। यहाँ राव मौज सिंह और उनके पिता राव सुरजन सिंह ने एक महल का अनुरक्षण किया।

वर्तमान में, *चुनार रागमाला* चित्रों के कुछ ही पृष्ठ उपलब्ध हैं, जिसमें खंभावती, बिलावल, मालश्री, भैरवी, पटमंजरी रागिनियाँ व कुछ अन्य चित्र सम्मिलित हैं।

दीपक राग को रात्रि के समय अपनी प्रियतमा के साथ एक कक्ष में बैठे हुए चित्रत किया गया है जो चार दीपकों की ज्योति से पूर्ण प्रकाशवान है। जिनमें से दो दीपकों के आधार भाग-नूतन ढंग से अलंकृत मानव आकृतियों के रूप में चित्रित किए गए हैं। आकाश असंख्य तारों से झिलमिल है, चंद्रमा का रंग पीला होता हुआ दिखाया गया है, जो इस बात का सूचक है कि इस युगल को एक साथ बैठे कई घंटे व्यतीत हो चुके हैं।

इस चित्र में हम देख सकते हैं कि महल के गुंबद के ऊपर के कलश पर बाहर की ओर आती हुई एक पट्टी है जिस पर केवल दीपक राग लिखा हुआ है। इससे चित्र रचना की प्रक्रिया की सूचना मिलती है कि प्राय: चित्र पूर्ण करके ही सुलेखक को दिया जाता था। इस संदर्भ में कविता कभी लिखी नहीं गई और शीर्षक कलाकार के लिए संकेत होता था कि उसे क्या चित्रित करना है।

अश्विन, बाराहमासा, बूँदी, सत्रहवीं शताब्दी, छत्रपति शिवाजी महाराज वास्तु संग्रहालय, मुंबई

बारहमासा बूँदी चित्रकला का लोकप्रिय विषय है। जैसा कि पहले भी उल्लेरख हुआ है कि यह बारह महीनों का वातावरणीय विवरण है जो केशवदास की पुस्तक *कविप्रिया* के दसवें अध्याय का भाग है, जिसे ओरछा की गणिका राय परबीन के लिए लिखा गया था।

कोटा चित्रकला शैली

बूँदी की कुशल पारंपरिक चित्रकला ने राजस्थानी शैली की एक बहुत उत्कृष्ट शैली, कोटा को उदित किया। यह शैली शिकार के दृश्यों को चित्रित करने में उत्कृष्ट थी और पशुओं के शिकार के एक असाधारण उत्साह एवं जुनून को प्रकट करती थी।

बूँदी और कोटा 1625 ई. तक एक ही राज्य थे। जहाँगीर ने बूँदी साम्राज्य को विभाजित करके एक भाग राव रतन सिंह (बूँदी के भोज सिंह के पुत्र) के पुत्र मधु सिंह को पुरस्कारस्वरूप दिया, जिसने दक्कन में जहाँगीर के पुत्र (राजकुमार) शहज़ादे खुर्रम (शाहजहाँ) के विद्रोह के खिलाफ़ वीरता का परिचय दिया था।

कोटा के महाराजा राम सिंह प्रथम, मुकुंदगढ़ में शेरों का शिकार करते हुए, 1695, कोलघी गैलरी, लंदन

बूँदी से अलग होने पर, जगत सिंह (1658–83) के शासन काल में 1660 में कोटा में अपनी अलग शैली की शुरुआत हुई। आरंभिक काल में बूँदी और कोटा शैली में अंतर नहीं किया जा सका, क्योंकि कुछ दशकों तक कोटा के चित्रकारों ने बूँदी की कला को ही गृहीत किया हुआ था। कुछ संरचना पूर्णतया बूँदी चित्रों से ही ली गई थीं। परंतु मानव कृति और वास्तुकला में इस प्रवृत्ति की गैर अनुरूपता की अतिशयोक्ति दिखाई देती है। कोटा चित्रकला शैली की प्रवृत्ति ने आने वाले दशकों में आश्चर्यजनक ढंग से अपनी विशिष्ट पहचान बनाई।

राम सिंह प्रथम (1686–1708) के समय तक कलाकारों ने पूर्ण मनोभाव से अपने विषयों की विविधता की सूची का स्तर बढ़ाया। ऐसा प्रतीत होता है कि कोटा के कलाकारों ने सर्वप्रथम वन दृश्य चित्रों को अपनी रचनाओं के वास्तविक विषय के रूप में चित्रित किया। उमेद सिंह (1770–1819) 10 वर्ष की आयु में राज सिंहासन पर बैठे, किंतु उनके शक्तिशाली राज्याधिकारी ज़ालिम सिंह, युवा राजा को खुश करने के लिए शिकार की व्यवस्था करते थे, जबकि वे राज्य के कार्यों को नियंत्रित करते थे। इस प्रकार उमेद सिंह ने कम समय में स्वयं को वन्य जीवों और जुआ खेलने में व्यस्त कर लिया और अपना अधिकांश समय शिकार में ही व्यतीत किया। समकालीन चित्र उनके पराक्रम का कीर्तिमान प्रस्तुत करते हैं। इस समय के कोटा चित्र शतरंज के जुनून को दर्शाते हैं जो एक सामाजिक प्रथा बन गया था, जिसे खेलने के लिए दरबार की स्त्रियाँ भी शामिल होती थीं।

कोटा चित्र विशिष्ट रूप से सहज हैं, इसमें सुलेखन के निष्पादन और मुख्यत: दोहरे नयनपट में छाया अंकित करने पर ज़ोर दिया जाता था। कोटा कलाकारों ने पशुओं एवं युद्ध के प्रतिपादन में उत्कृष्ट प्रदर्शन किया।

बीकानेर चित्रकला शैली

राव बीका राठौर ने 1488 में, राजस्थान राज्य में सबसे अधिक उन्नत राज्य बीकानेर की स्थापना की। उसके शासन काल में अनूप सिंह (1669–98) ने एक पुस्तकालय स्थापित किया जो पांडुलिपियों एवं चित्रकला का कोष बना। लंबे अंतराल तक मुगलों की संगति के परिणामस्वरूप बीकानेर में एक विशेष चित्रकला की भाषा का विकास हुआ जो मुगल शैली के लालित्य और रंग पट्टिका से प्रभावित था।

© NCERT not to be republished

शिलालेख साक्ष्यों के अनुसार मुगल शिल्प के मुख्य कलाकार सत्रहवीं शताब्दी में बीकानेर आए और वहाँ काम किया। करण सिंह ने उस्ताद अली रज़ा, जो दिल्ली का मुख्य कलाकार था, को नियुक्त किया। उसके आरंभिक कार्य बीकानेर शैली की शुरुआत का प्रतिनिधित्व करते हैं, जो लगभग 1650 के समय के हो सकते हैं।

अनूप सिंह के शासन काल में रुकनुद्दीन (जिसके पूर्वज मुगल दरबार से आए थे) मुख्य कलाकार था, जिसकी शैली में देशज मुहावरों के साथ दक्षिणी या दक्कनी और मुगल परंपरा का मिश्रण था। उसने महत्वपूर्ण ग्रंथों, जैसे— *रामायण*, *रसिकप्रिया* और *दुर्गा सप्तशती* को चित्रित किया है। इब्राहिम, नाथू, साहिबदीन और ईसा आदि उसकी चित्रशाला के जाने-माने कलाकार थे।

बीकानेर में चित्रशाला बनाने की प्रथा प्रचलित थी जिन्हें मंडी कहा जाता था। जहाँ कलाकारों का समूह मुख्य चित्रकार के निर्देशन में चित्र रचना करते थे। शिलालेखों से ये सूचना प्राप्त कर सकते हैं कि रुकनुद्दीन, इब्राहिम और नाथू इनमें से कुछ व्यावसायिक चित्रशालाओं को संभालते थे। कुछ मंडियाँ अनूप सिंह के शासन काल में अस्तित्व में थीं। चित्र पूर्ण होने पर, दरबार के अभिलेखविद् मुख्य

गोवर्धन पर्वत को उठाते हुए कृष्ण, शहादीन द्वारा चित्रित, बीकानेर, 1690, ब्रिटिश संग्रहालय, लंदन

ERT published

गायों से घिरे कृष्ण बाँसुरी बजाते हुए, बीकानेर, 1777, राष्ट्रीय संग्रहालय, नयी दिल्ली

कलाकार का नाम और दिनांक चित्र के पीछे लिखते थे। इस अभ्यास के परिणामस्वरूप मुख्य कलाकार का नाम उसके शिष्यों के कार्यों पर अंकित किया जाता था जो अपने गुरु जैसी शैली में चित्र नहीं बना सकते थे। जबकि इन प्रविष्टियों से स्पष्ट होता है कि मुख्य कलाकार विशेष अवसर पर चित्रों को अंतिम रूप देते थे। इसके लिए 'गुदराई' शब्द प्रयोग किया जाता था, जिसका मतलब था 'ऊपर उठाना।' नवीन चित्रों के निर्माण की गतिविधियों के अतिरिक्त, चित्रों की मरम्मत या सुधार तथा पुराने चित्रों को बनवाने का कार्य भी चित्रशाला को सौंपा जाता था।

बीकानेर शैली के कलाकार के छवि चित्रणों की प्रथा अद्वितीय है और उनमें से बहुत-से चित्रण ऐसे हैं जिनमें उनकी वंशावली की जानकारी भी शामिल है। उन्हें उस्तास या उस्ताद कहते हैं। रुकनुद्दीन ने कोमल रंगों की तान से अति सुंदर चित्र बनाए। इब्राहिम के काम में धुँधले स्वप्नक जैसा गुण है। उनकी मानवकृतियों में चेहरे सुंदरता के साथ सुडौल हैं। उनकी चित्रशाला बहुत उन्नत प्रतीत होती है। उनका नाम विभिन्न चित्रण संग्रहों में आता है, जैसे— बारहमासा, रागमाला और रसिकप्रिया

बही के हिसाब-किताब, राजसी अभिलेख, दिन-प्रतिदिन की दैनंदिनी और कई शिलालेखों ने बीकानेर चित्रों को सर्वश्रेष्ठ-दस्तावेज़ों वाली चित्रकला शैली बना दिया। मारवाड़ी और कभी-कभी फ़ारसी अभिलेखों से कलाकारों के नाम, दिनांक, कुछ स्थानों पर यहाँ तक कि निर्माण स्थल, अवसर जिसके लिए चित्र बनाए गए थे आदि का भी पता चलता है।

किशनगढ़ चित्रकला शैली

व्यापक रूप से राजस्थान की सभी लघु चित्रकारियों में सबसे अधिक किशनगढ़ शैली के चित्र, अपनी उत्कृष्ट बनावट और धनुषाकार भौहों से बने चेहरे, कमल की पंखुड़ी के समान हलकी गुलाबी रंग की आँखें, झुकी पलकें, एक सुगठित नुकीली नाक और पतले होंठ जैसी शैलीकृत विशेषताओं से अपनी विशिष्ट पहचान बनाते हैं।

जोधपुर के राजा के पुत्रों में से एक पुत्र, किशन सिंह ने 1609 ई. में किशनगढ़ राज्य की स्थापना की थी। सत्रहवीं शताब्दी के मध्य में मानसिंह (1658–1706) के संरक्षण में कलाकार पहले से ही किशनगढ़ दरबार में काम कर रहे थे। राज सिंह

not to be republished © NCERT

एक मंडप में कृष्ण और राधा, निहाल चंद, किशनगढ़, 1750, इलाहाबाद संग्रहालय

(1706–48) के शासन काल के दौरान अठारहवीं शताब्दी के प्रारंभ में राज्य में एक विशिष्ट शैली विकसित हुई, जिसमें लंबी मानवाकृति, प्रचुरता से हरे रंग का प्रयोग और मनोरम दृश्य चित्रों का चित्रण हुआ। वल्लभाचार्य के पुष्टि मार्ग में राज सिंह के आरंभिक प्रयास से कृष्ण लीला किशनगढ़ शासकों का पसंदीदा विषय बन गया और उनकी दरबारी कला के एक प्रमुख भाग का प्रतिनिधित्व किया।

निहालचंद, सावंत सिंह का सबसे मशहूर और उत्कृष्ट कलाकार था। निहालचंद ने सावंत सिंह के लिए 1735 – 57 तक कार्य किया और सावंत सिंह की कविताओं पर चित्र संयोजित किए जो मुख्यत: दिव्य युगल राधा-कृष्ण पर बने थे। इन्हें दरबारी परिवेश में प्राय: विशाल मनोरम परिदृश्य में छोटी आकृतियों के रूप में बारीकी से चित्रित किया गया था। किशनगढ़ कलाकारों ने सुस्पष्ट रंगों द्वारा दृश्यों के चित्रण को उजागर किया।

जोधपुर चित्रकला शैली

सोलहवीं शताब्दी में मुगलों की राजनैतिक उपस्थिति से उनकी सौंदर्यात्मक दृष्टि का प्रभाव छवि चित्रण एवं दरबारी दृश्य चित्रों आदि पर नज़र आता है। हालाँकि, स्वदेशी लोक शैली संस्कृति इतनी व्यापक और गहरी पैठ लिए हुए थी कि उसका प्रभाव हावी नहीं होने दिया और अधिकांश संग्रहित चित्रों में प्रचलित रही। रागमाला पाली में चित्रित एक आरंभिक चित्र संग्रह है, जो कलाकार वीरजी द्वारा 1623 में चित्रित किया गया था।

इन चित्रों की रचना की शुरुआत सत्रहवीं शताब्दी के मध्य में महाराजा जसवंत सिंह (1638–78) के काल में हुई थी। छवि चित्रण एवं दरबारी जीवन को प्रदर्शित करने वाले दस्तावेज़ी चित्रों की प्रथा इन्हीं के संरक्षण में, लगभग

© NCERT not to be republished

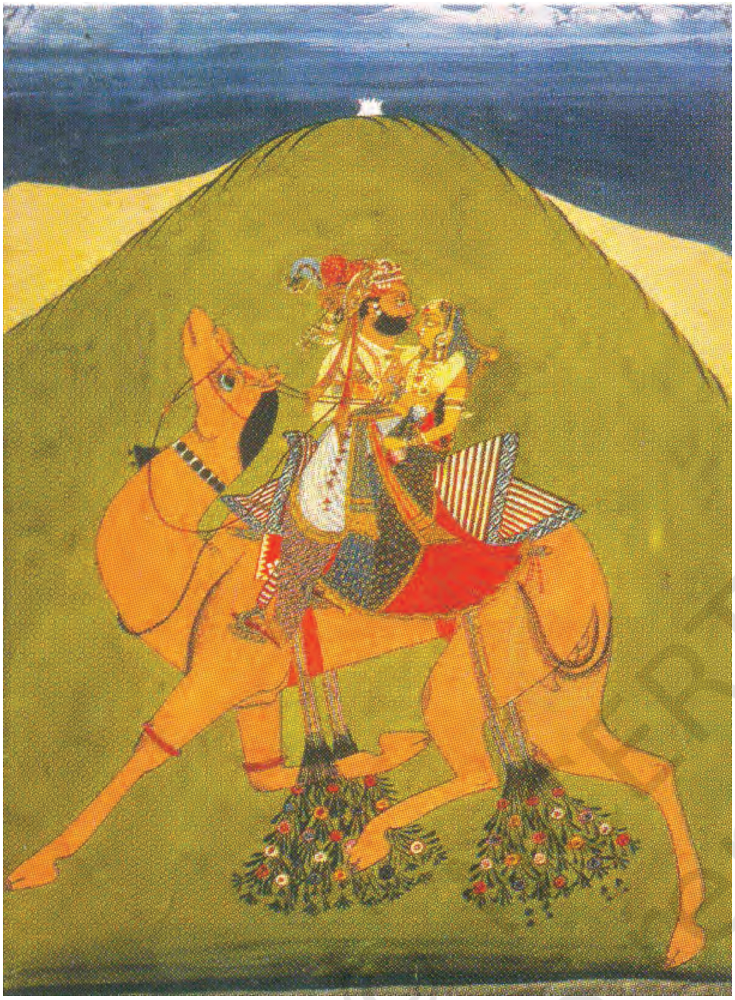

ढोला और मारू,
जोधपुर, 1810, राष्ट्रीय संग्रहालय,
नयी दिल्ली

1640 में शुरू हुई थी और उसका उन्नीसवीं शताब्दी में छायाचित्रों के आगमन तक एकमात्र विशिष्ट एकाधिकार रहा। तब यह चित्रों के अभिलेख वृत्तांत का पर्याय बन गया। जसवंत सिंह के अनेक छवि चित्र मिलते हैं। श्रीनाथजी के वल्लभ पंथ की ओर व्यक्तिगत झुकाव होने के कारण उन्होंने कृष्ण से संबंधित विषयों को *भागवत पुराण* के साथ विशिष्ट रूप में संरक्षित किया।

उनका उत्तराधिकारी अजित सिंह (1679–1724), औरंगज़ेब के साथ 25 वर्षों के युद्ध के बाद राजा बना जो कि प्रसिद्ध योद्धा वीर दुर्गादास राठौर द्वारा लड़ा गया था। अजीत सिंह ने सफलतापूर्वक मेवाड़ को पुन: अपने अधिकार में किया, अजीत सिंह के काल में दुर्गादास और उसकी बहादुरी को कविताओं और दरबारी चित्रकला में प्रसिद्धि प्राप्त हुई। दुर्गादास के घुड़सवारी के छवि चित्र बहुत प्रसिद्ध हुए।

जोधपुर चित्रकला के अंतिम चरण की रचनात्मकता मानसिंह (1803–43) के शासन काल से मेल खाती है। उसके समय के महत्वपूर्ण चित्र संग्रह, *रामायण (1804)*, *ढोला-मारू*, *पंचतंत्र* (1804) और *शिवपुराण* में हैं। *रामायण* चित्र बहुत रुचिकर हैं, क्योंकि कलाकार ने अपनी समझ के अनुसार जोधपुर को राम की अयोध्या के रूप में प्रस्तुत किया है। इसीलिए बाज़ार, गलियाँ, प्रवेशद्वार आदि उस समय के जोधपुर का आभास कराते हैं। वास्तव में, सभी चित्रकला शैलियों में स्थानीय वास्तुकला, पहनावा और सांस्कृतिक पहलू, कृष्ण, राम और अन्य कहानियों से एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं और चित्रों में प्रदर्शित हुए हैं।

मानसिंह, नाथ संप्रदाय के अनुयायी थे और उनकी चित्रकला में नाथ गुरुओं के साथ चित्र मिलते हैं। *नाथ चरित* (1824) के एक समुच्चय को भी चित्रित किया गया था।

उन्नीसवीं शताब्दी तक, मेवाड़ चित्रों के पीछे लिखे वर्णन में चित्र के विषय में बहुत अधिक जानकारी नहीं मिलती। यदा-कदा तिथियाँ अंकित हुई हैं और बहुत कम कलाकारों के नाम और चित्रों के स्थान के बारे में जानकारी मिलती है।

© NCERT not to be republished

जयपुर चित्रकला शैली

जयपुर चित्रकला शैली की उत्पत्ति उसकी पूर्व राजधानी आमेर में हुई थी, जो मुगल राजधानियों— आगरा और दिल्ली से सभी बड़े राजपूत राज्यों से निकटतम थी। शुरुआती समय से ही जयपुर के शासकों ने मुगल सम्राटों के साथ सैहार्दपूर्ण संबंध बनाए रखे, जिन्होंने आमेर में कलात्मकता को बहुत प्रभावित किया। राजा भारमल (1548–75) ने अपनी बेटी की शादी अकबर से की। उनके पुत्र भगवंत दास (1575–92) अकबर के घनिष्ठ मित्र थे और उनके बेटे मानसिंह, अकबर के सबसे विश्वसनीय सैन्य प्रमुख थे।

एक प्रभावशाली शासक सवाई जय सिंह (1699–1743) ने 1727 में अपने नाम पर एक नई राजधानी जयपुर की स्थापना की और आमेर से स्थानांतरित हो गए। उनके शासन काल में जयपुर चित्रकला शैली संपन्न हुई और एक नामांकित स्वतंत्र शैली के रूप में उभरी। दरबारी दस्तावेज़ों से पता चलता है कि कुछ मुगल कलाकारों को अपनी चित्रशाला का हिस्सा बनाने के लिए दिल्ली से लाया गया। वे वैष्णव संप्रदाय के प्रति आकर्षित हुए और राधा-कृष्ण विषय पर अनेक चित्रों का निर्माण करवाया। *रसिकप्रिया*, *गीत-गोविंद*, *बारहमासा* और *रागमाला* पर आधारित चित्रों के संग्रह, उनके शासन काल के दौरान कलाकारों ने बनाए, इनमें आश्चर्यजनक ढंग

गोधुली का समय, जयपुर, 1780
राष्ट्रीय संग्रहालय, नयी दिल्ली

से नायक की आकृति शासक से मिलती-जुलती है। छवि चित्रण भी उनके समय में बहुत लोकप्रिय था और एक निपुण चित्रकार, साहिबराम उनकी चित्रशाला का हिस्सा था। मुहम्मद शाह एक और अन्य कलाकार था।

सवाई इश्वरी सिंह (1743–50) ने भी इसी तरह कला का संरक्षण किया। धार्मिक एवं साहित्यिक ग्रंथों के अतिरिक्त उन्होंने अपने अवकाश के क्षणों को भी चित्रित किया, जैसे कि हाथी की सवारी, सुअर एवं बाघ का शिकार, हाथी के झगड़े आदि। सवाई माधो सिंह (1750–67) भी अपने दरबारी जीवन की घटनाओं को अंकित कराने की ओर आकर्षित हुए।

अठारहवीं शताब्दी वह समय था जब सवाई प्रताप सिंह (1779–1803) की इच्छानुसार मुगल प्रभाव कम हुआ और जयपुर शैली पुनर्निर्मित सौंदर्यशास्त्र के साथ, मुगल और स्वदेशी शैलीगत विशेषताओं का मिश्रण बनी। यह जयपुर के लिए दूसरा संपन्न काल था और प्रताप सिंह ने लगभग 50 कलाकारों को नियुक्त किया था। वे एक विद्वान, कवि, बहुसर्जक लेखक और कृष्ण के उत्साही अनुयायी थे। उनके समय में शाही छवि चित्रण और दरबारी शान-शौकत को प्रदर्शित करने वाले चित्रों के अलावा साहित्यिक और धार्मिक विषयों, जैसे— *गीत गोविंद*, रागमाला, *भागवत पुराण* आदि विषयों को नये सिरे से प्रोत्साहन मिला।

कई स्थानों पर छापकर भी अनेक चित्रों की प्रतियाँ बनवाई गईं। उन्नीसवीं शताब्दी के आरंभ में सोने का प्रचुर मात्रा में प्रयोग हुआ। जयपुर में बड़े आकार की आकृतियाँ और जीवंत-आकार के छवि चित्रों का निर्माण किया गया।

अभ्यास

1. आपके विचार में किस प्रकार से पश्चिमी भारतीय पांडुलिपि चित्रकला परंपरा ने राजस्थान लघु चित्रकला परंपराओं के विकास को दिशा निर्देश दिए?
2. राजस्थानी चित्रकला की विभिन्न शैलियों का वर्णन करें और उनकी विशेषताओं को उदाहरण सहित लिखें।
3. रागमाला क्या है? राजस्थान की विभिन्न शैलियों से रागमाला चित्रों के उदाहरण दीजिए।
4. एक मानचित्र बनाएँ और उसमें राजस्थानी लघु चित्रकारी की सभी शैलियों को दर्शाएँ।
5. कौन-से ग्रंथ लघु चित्रकारी के लिए सामग्री और विषय प्रदान करते हैं? उदाहरण सहित वर्णन कीजिए।

© NCERT not to be republished

भागवत पुराण

मध्ययुगीन काल में, *भागवत पुराण* के भगवान कृष्ण के जीवन और उनकी लीलाओं के विभिन्न दृश्यों को दर्शाते चित्र कलाकारों के लोकप्रिय विषय रहे हैं। राष्ट्रीय संग्रहालय, नयी दिल्ली में संग्रहित यह चित्र कृष्ण द्वारा दानव शक्तासुर के वध को दर्शाता है (1680–90)।

भागवत पुराण का यह पृष्ठ मालवा शैली का एक विशिष्ट उदाहरण है जिसमें सतह को बड़ी सावधानीपूर्वक विभाजित किया गया है और प्रत्येक भाग में एक घटना के अलग-अलग दृश्य अंकित किए गए हैं। इनमें से एक में कृष्ण जन्म के बाद नंद और यशोदा के घर आयोजन एवं उत्सव का दृश्य अंकित है। पुरुष और स्त्रियाँ नाच-गा रहे हैं (निचले बायें और ऊपरी मध्य भाग में)। आनंदित अभिभावक नंद एवं धर्मार्थ की यशोदा गतिविधियों में व्यस्त हैं और ब्राह्मणों और शुभचिंतकों को (मध्य बायें और एकदम दायें) गाय व बछड़े का दान देते हुए दर्शाए गए हैं; बहुत-सा स्वादिष्ट भोजन तैयार किया जा रहा है (मध्य भाग में)। स्त्रियाँ बाल कृष्ण की नज़र उतार रही हैं (ऊपर बायीं ओर) और कथा का अंत कृष्ण द्वारा दानव शक्तासुर को अपने पैरों द्वारा मारकर मुक्ति दिलाने से होता है।

मारू रागिनी

मेवाड़ के रागमाला चित्रों का संग्रह विशेष रूप से बहुत महत्वपूर्ण है। इनमें से एक चित्रण में इसके कलाकार, संरक्षक, स्थान और चित्र की दिनांक के बारे में निर्णायक दस्तावेज़ी साक्ष्य दिए गए हैं। मारू रागिनी इसी संग्रह में से एक है जो राष्ट्रीय संग्रहालय, नयी दिल्ली मे संग्रहित है। चित्र पर पाए गए अभिलेख का प्रारंभिक हिस्सा, मारू रागिनी का प्रतिनिधित्व करते हुए, मारू को राग श्री की रागिनी के रूप में वर्गीकृत करता है और उनकी शारीरिक सुंदरता और उनके प्रिय पर इसके प्रभाव का वर्णन करता है। यह अगला भाग है जो पढ़कर मनोरंजक लगता है— "संवत 1685 वर्षे असो वद 9 राणा श्री जगत सिंह राजेन उदयपुर मधे लिखितम चितारा साहिबदीन बचन हारा ने राम राम।"

संवत 1685 वास्तव में 1628 ई. है और साहिबदीन को 'चितारा' कहा गया है, जिसका अर्थ है, 'वह जो चित्रित करता है', और चित्रण कार्य को 'लिखितम' कहा गया है, जिसका अनुवाद है, 'लिखा हुआ' क्योंकि कलाकार का लक्ष्य चित्र में लिखे पद्य के समतुल्य चित्र प्रस्तुत करना था।

मारू को राग सहचरी के रूप में जाना जाता है, क्योंकि क्षेत्र के लोकगीतों और मौखिक परंपरा में डोला मारू गीतकथा की लोकप्रियता गहरी पैठ बनाए हुए है। यह डोला नाम के एक राजकुमार और राजकुमारी मारू की कहानी है, जिन्हें एक साथ होने के लिए कई संघर्षों से गुज़रना पड़ा। कहानी का आधार परीक्षण और पीड़ा, अमंगलकारी रिश्तेदार, युद्ध, दुखद दुर्घटनाएँ हैं। चित्र में उन्हें ऊँट पर बैठकर भागते हुए दर्शाया गया है।

not to be republished

राजा अनिरुद्ध सिंह हाड़ा

अनिरुद्ध सिंह (1682–1702) भाऊ सिंह का उत्तराधिकारी था। रोचक दस्तावेज़ साक्ष्य के साथ इनके समय की चित्रकला के कुछ उल्लेखनीय अवशेष बचे हैं। 1680 ई. में कलाकार तुलची राम द्वारा चित्रित अश्वारोही अनिरुद्ध का चित्र बहुत चर्चित है। यह एक कलाकार की गति की धारणा और एक घोड़े की गति का प्रतीक है जिसे अग्रभूमि के प्रतिपादन की पूरी तरह उपेक्षा करके दर्शाया गया है। घोड़े को हवा में इतना तेज़ दौड़ते हुए दिखाया गया है कि ज़मीन दिखाई नहीं देती। इस प्रकार के चित्र आज भी कथाओं में चित्रित होते हैं। चित्र के पीछे तुलची राम और राजकुमार (कुंवर) अनिरूद्ध सिंह के नाम अंकित हैं, लेकिन सामने, राव छत्रसाल के छोटे पुत्र, भरन सिंह का नाम अंकित है। कुछ विद्वानों का मानना है कि यह चित्र भरत सिंह का प्रतिनिधित्व करता है, जबकि ज़्यादातर लोगों की राय है कि यह सिंहासन पर बैठने से पहले युवा अनिरुद्ध सिंह को दर्शाता है। यह चित्र राष्ट्रीय संग्रहालय, नयी दिल्ली में संग्रहित है।

चौगन खेलती राजकुमारियाँ

इस चित्रकला में कलाकार दाना द्वारा राजकुमारी को अपनी साथियों के साथ चौगन (पोलो) खेलते हुए दर्शाया गया है जो कि मानसिंह के शासन काल के जोधपुर चित्रकला का प्रतिनिधित्व करती है। संभावना है कि यह मुख्य दरबार से हो भी सकती है और नहीं भी, क्योंकि कई शैलियों का शैलीगत प्रभाव इसमें प्रकट होता है, जैसे— स्त्रियों को चित्रित करने में मुगल प्रभाव दिखता है, घोड़े के चित्रण में दक्कन का प्रभाव, चेहरे की विशेषताओं के चित्रण में बूँदी और किशनगढ़ और हरे रंग की सपाट सतह पृष्ठभूमि के लिए स्वदेशी वरीयता का संकेत मिलता है। चित्र के ऊपरी हिस्से में एक पंक्ति लिखी है जिसका अनुवाद इस प्रकार है— "घोड़े पर सवार युवतियों का खेल।" यह चित्रकला 1810 में बनाई गई थी और राष्ट्रीय संग्रहालय, नयी दिल्ली में संग्रहित है।

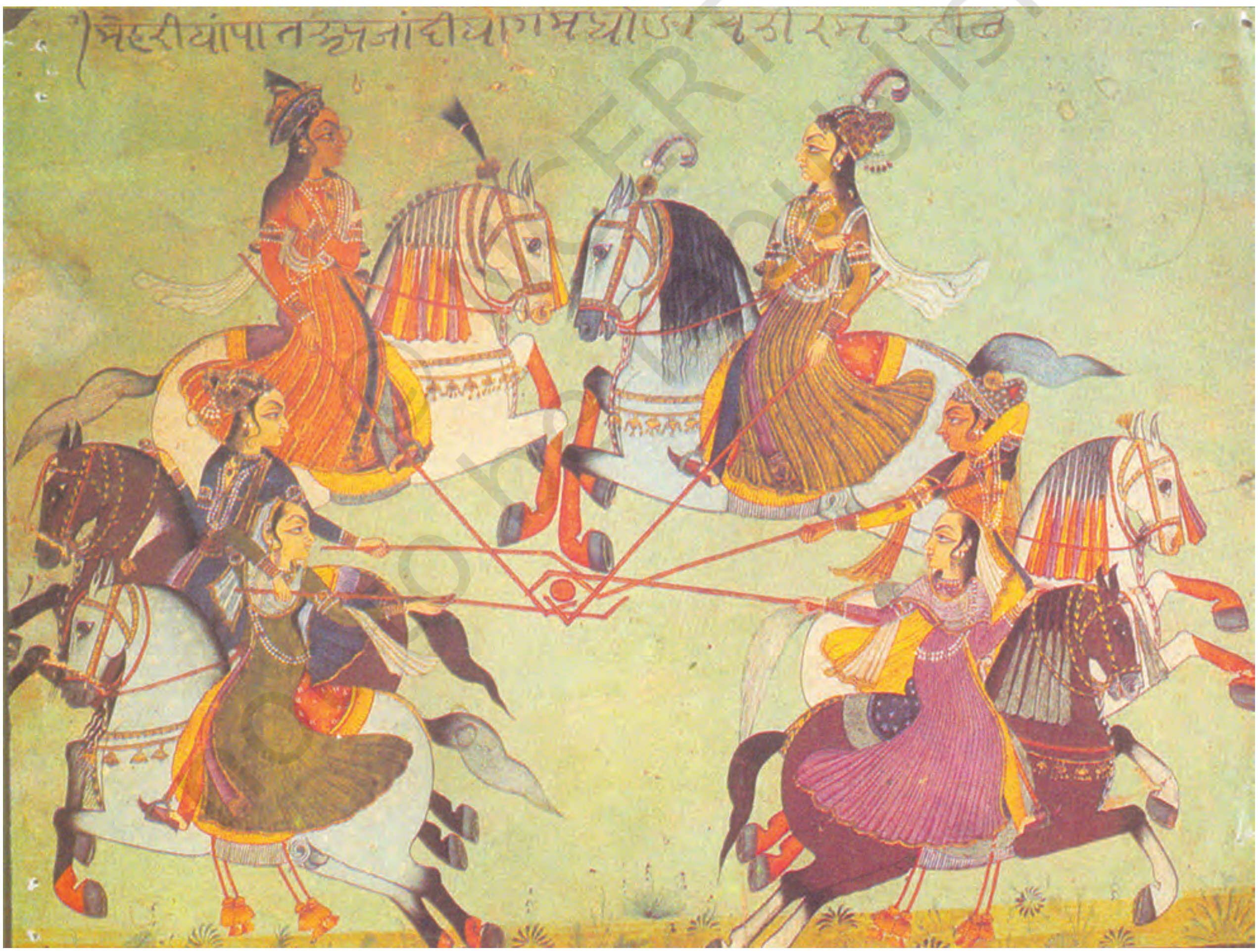

झूले पर कृष्ण एवं उदास राधा

यह चित्रकला *रसिकप्रिया* को दर्शाती है, इसमें कलाकार का नाम और तारीख अंकित है। 1683 ई. में कलाकार नूरुद्दीन द्वारा इसे चित्रित किया गया, जिन्होंने बीकानेर दरबार में 1674–1698 तक कार्य किया। यह चित्र वास्तुकला और दृश्य चित्रण के तत्वों के न्यूनतम और सांकेतिक प्रतिनिधित्व के साथ एक शुद्ध और सरल रचना प्रस्तुत करता है। चित्रकला को दो भागों में विभाजित करने के लिए नूरुद्दीन ने चित्र के मध्य में हलके तरंगित टीले के रूप को सरलता से नियोजित किया है। यह नियोजन एक शहरी विन्यास को पेड़ से लदे ग्रामीण क्षेत्र में बदल देता है या इसके विपरीत ग्रामीण क्षेत्र को शहरी विन्यास में बदल देता है। चित्र के ऊपरी हिस्से में चित्रित वास्तुशिल्प मंडल उस स्थान को महल के आंतरिक हिस्से के रूप में दर्शाता है, जबकि हरी घास के मैदान पर कुछ वृक्ष बाहरी और देहाती परिदृश्य को प्रदर्शित करते हैं। इस प्रकार घर के अंदर और बाहर होने वाली गतिविधियों को कोई भी समझ सकता है।

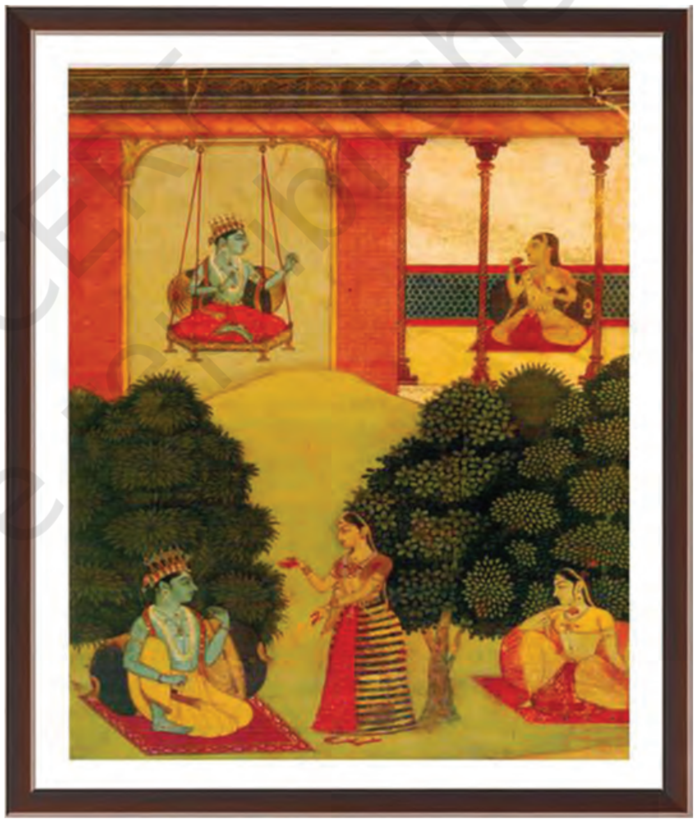

चित्र के ऊपरी हिस्से में कृष्ण एक गोपी के आवास में झूले पर बैठे उसके साथ आनंद ले रहे हैं। उनके विनोद स्थल के बारे में जानने पर रूठी हुई राधा, दु:खी होकर, ग्रामीण बस्ती से दूर एक वृक्ष के नीचे अकेली बैठ जाती है। राधा के दु:ख के बारे में जानकार कृष्ण व्याकुल हो उठते हैं और उनके पीछे-पीछे आते हैं, परंतु संधि नहीं होती है। इसी बीच राधा की सखी को ये प्रकरण पता चलता है और वह संदेशवाहक और शांतिदूत की भूमिका निभाती है। वह कृष्ण के पास आती है और उन्हें राधा के दु:ख और दुर्दशा के बारे में बताती है और उनसे राधा को मनाने के लिए प्रार्थना करती है। यह चित्र राष्ट्रीय संग्रहालय, नयी दिल्ली में संग्रहित है।

© NCERT not to be republished

बनी ठनी

सावंत सिंह ने ब्रजभाषा में लेखक नागरी दास के नाम से कृष्ण और राधा पर भक्तिपूर्ण कविता की रचना की। उनके बारे में कहा जाता है कि वे एक युवा गायिका के प्रेम में दीवाने थे जिसे 'बनी ठनी' का नाम दिया गया था, उसका सौंदर्य मोहित करने वाला था, क्योंकि उसकी सुंदरता और शिष्टता अद्वितीय थी। वह राजसिंह की पत्नी की परिचारिका थी और एक अत्यंत प्रतिभाशाली कवयित्री, गायिका और नर्तकी थी। बनी ठनी सावंत सिंह की कविता की प्रेरणा स्रोत थी, जिन्होंने राधा-कृष्ण के प्रेम-प्रसंग पर कविता लिखी। उन्होंने एक कविता 'बिहारी जस चंदिका' में बनी ठनी के बारे में लिखा है, जो निहालचंद के चित्र बनी ठनी का आधार बनी, इस प्रकार कविता एवं चित्र का सम्मिश्रण प्रदर्शित होता है। स्वजनों की हत्या से परेशान, सावंत सिंह ने अंतत: 1757 में सिंहासन त्याग दिया और बनी ठनी के साथ वृंदावन चले गए।

किशनगढ़ के अतिरंजित चेहरे का प्रकार, जो किशनगढ़ शैली की विशिष्ट और प्रमुख शैलीगत पहचान बना, माना जाता है कि यह बनी ठनी के आकर्षक तेज चेहरे की विशेषताओं से लिया गया है।

निहालचंद को किशनगढ़ की अति सुंदर एवं विशिष्ट मुख्य कृति का रूप बदलने का श्रेय दिया जाता है जो सांवत सिंह और बनी ठनी की आकृतियों में राधा और कृष्ण के रूप में नयनाभिराम दृश्यों में शानदार रंगों से चित्रित हुआ।

राधा के रूप में बनी ठनी चित्र में राधा का चेहरा उसकी घुमावदार आँखों, भौंहों के अतिरंजित मेहराव, तीक्ष्ण नाक, गालों पर सर्पित लहरदार केश, पतले होंठ और स्पष्ट ठोड़ी अद्वितीय है। यह विशेष चित्र राष्ट्रीय संग्रहालय, नयी दिल्ली में संग्रहित है।

© NCERT not to be republished

चित्रकूट में राम और उनके परिवार का मिलन

गुमान द्वारा चित्रित *रामायण* 1740–50 के मध्य चित्र कथा की निरंतरता को चित्रित करने का उत्कृष्ट उदाहरण है। साधारण-सी दिखने वाली झोपड़ी (पर्णकुटी), जिसे आधारभूत सामग्री, जैसे— मिट्टी, लकड़ी और हरे पत्तों से पहाड़ी तलहटी के जंगल में, वृक्षों से घिरे ग्रामीण दृश्य के रूप में स्थापित किया गया है, जहाँ *रामायण* का यह प्रसंग घटित हुआ था। कलाकार गुमान ने बायें से कथा शुरू करते हुए इसे दायीं ओर समाप्त किया है।

रामायण के अनुसार, जब राम को वनवास भेजा गया तब भरत वहाँ उपस्थित नहीं थे। दशरथ के निधन के पश्चात्, दु:ख से उबरने और पश्चाताप में डूबे भरत अपनी तीनों माताओं, ऋषि विशिष्ठ और दरबारियों के साथ, राम को मनाने के लिए उनसे मिलने जाते हैं।

चित्रकला में कहानी तीन माताओं के साथ शुरू होती है जो चित्रकूट में राजकुमारों की पत्नियों के साथ झोपड़ीनुमा आवासों की ओर बढ़ती हैं। माताओं को देखते ही राम, लक्ष्मण और सीता श्रद्धा में झुक जाते हैं। शोकग्रस्त कौशल्या

अपने पुत्र राम के पास पहुँचती हैं और उन्हें अपनी बाँहों में ले लेती हैं। राम, तब अन्य दो माताओं सुमित्रा और कैकेयी को सम्माानपूर्वक नमस्कार करते हैं। फिर वे कर्तव्यनिष्ठापूर्वक ऋषियों को स्वीकारते हैं और नीचे बैठकर उनसे बात करते हैं। जब ऋषि दशरथ की मृत्यु का समाचार सुनाते हैं तो राम वेदना में एकाएक गिर जाते हैं। सुमंत को ऋषियों के पीछे श्रद्धापूर्वक खड़े हुए दिखाया गया है। तीनों माताओं और लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न की पत्नियों को सीता से बात करते हुए दर्शाया गया है। दायीं तरफ़ चित्र की चौखट से बाहर निकलने वाले समूह के साथ कथा की समाप्ति होती है। चित्र में कथा के हर पात्र को अंकित किया गया है। यह चित्र राष्ट्रीय संग्रहालय, नयी दिल्ली में संग्रहित है।

© NCERT not to be republished

3

मुगलकालीन लघु चित्रकला

12148CH03

मुगल चित्रकला, लघु चित्रकला शैली है, जो सोलहवीं शताब्दी और उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक भारतीय उपमहाद्वीप में विकसित हुई। यह चित्रकला परिष्कृत तकनीक और विषयवस्तु की विविधता के लिए जानी जाती है। मुगल चित्रकला ने कई परवर्ती चित्रकला शैलियों व भारतीय चित्रकला शैलियों को प्रेरित किया जिसके कारण भारतीय चित्रकला में मुगल चित्रकला शैली का एक विशिष्ट स्थान है।

मुगल शासक विभिन्न कलारूपों के संरक्षक थे। प्रत्येक मुगल उत्तराधिकारी ने अपनी रुचि व पसंद के आधार पर सुलेखन चित्रकला, वास्तुकला, किताब बनाना, पुस्तकें चित्रित करना आदि के विकास में अपना योगदान दिया। उन्होंने कलाकारों की चित्रशाला (एटेलियर) में गहरी रुचि ली तथा अभूतपूर्व नयी शैली का पालन-पोषण कर तत्कालीन कला परिदृश्य को गतिशीलता प्रदान की और उसे नई ऊँचाई पर ले गए। अत: मुगलकालीन चित्रकला को समझने के लिए प्राय: मुगलकालीन राजनीति एवं वंशावली को ध्यान में रखा जाता है।

मुगल चित्रकला पर विभिन्न प्रभाव

मुगल लघु चित्रकला में देशीय विषयवस्तु और चित्रकला शैली, फ़ारसी शैली व उसके बाद यूरोपीय शैली का सम्मिश्रण रहा है। इस काल की कलाओं में देशी व विदेशी प्रभावों के घुलने-मिलने की झलक दिखाई देती है। मुगल चित्रकला शैली अपने चरम पर इस्लामिक, भारतीय व यूरोपियन दृश्य संस्कृति और सौंदर्य के अति परिष्कृत मिश्रित रूप को प्रस्तुत करती है। मिश्रित शैली वाले चित्रों को देखते हुए उस काल में निर्मित कलाकृतियों का यह समृद्ध खज़ाना पहले से चली आ रही उस काल की पारंपरिक मूल भारतीय व ईरानी शैली से काफी अधिक विकसित था। इस शैली का महत्व इसके संरक्षकों के उद्देश्य, प्रयास व इसके कलाकारों की बेजोड़ क्षमता में निहित है। यह अद्वितीय चित्रकला शैली कलाकारों व कला संरक्षकों दोनों के दार्शनिक विचार, अभिरुचियों, विश्वास और सौंदर्यबोध की कलात्मक अभिव्यक्ति है।

मुगल दरबार में कला अधिक औपचारिक हो गई, क्योंकि वहाँ कार्यशालाएँ थीं। कार्यशाला में ईरान से बुलाए गए चित्रकार भी शामिल होते थे, जिसके परिणामस्वरूप

© NCERT not to be republished

विशेष रूप से अपने आरंभिक वर्षों के दौरान मुगल चित्रकला शैलियों में भारतीय व ईरानी चित्रकला शैलियों का अति सुंदर सामंजस्यपूर्ण मिश्रण हुआ। मुगलकालीन चित्रकला की श्रेष्ठता भारतीय और ईरानी दोनों मूल के चित्रकारों द्वारा उनकी अलग-अलग चित्रकला शैलियों की विशिष्टताओं का विवेकपूर्ण मिलान करने से ही उपलब्ध हो सकी। इन चित्रकारों ने मुगल शैली के निर्माण और उसे कलात्मक शिखर तक पहुँचाने में भरपूर योगदान दिया।

मुगल चित्रशाला में सुलेखक, चित्रकार, जिल्दसाज, मुलमची (सोना फेरनेवाले) होते थे। उस समय के महत्वपूर्ण आयोजनों के विवरण, हस्तियाँ और शासक की रुचियाँ चित्रों में दर्ज़ किए जाते थे। ये चित्र सिर्फ़ शाही परिवार के सदस्यों के देखने के लिए होते थे। ये चित्र प्रायः शाही व्यक्तियों की बौद्धिक व मानसिक संवेदनशीलता के अनुकूल चित्रित किए जाते थे। ये चित्र पांडुलिपियों और एल्बम के भाग होते थे।

भारत में कला व चित्रकला की परंपरा की समृद्ध ऐतिहासिक जड़ों के बारे में हम पहले के अध्यायों में पढ़ चुके हैं। भारत के सुप्रसिद्ध मुगल चित्रों के विकास को कई चित्रकला शैलियों के आपसी आदान-प्रदान के संदर्भ में देखा जा सकता है। इनमें प्राक् मुगल शैली, भारतीय व ईरान की कई समकालीन चित्रकला शैलियों का समावेश था। इस प्रकार मुगल चित्रकला शैली का विकास एकाएक नहीं हुआ है। बल्कि उस समय मौजूद विभिन्न कलारूपों व शैलियों के प्रत्यक्ष मेलजोल के कारण यह पल्लवित हुई है। मूल भारतीय व मुगल चित्रकला शैलियाँ एक साथ विद्यमान थीं। दोनों ही चित्रकला शैलियों ने एक-दूसरे को प्रभावित किया और एक साथ घुल-मिल गईं।

भारत में प्राक् मुगल शैली व उसके सामांतर देशीय चित्रकला शैलियों की अपनी विशिष्टताएँ थीं, जिसमें उनका सौंदर्यबोध और उद्देश्य निहित था। मूल भारतीय चित्रकला शैली का सपाट परिदृश्य सशक्त रेखांकन, बहुरंगी रंगयोजना, आकृति व वास्तु के स्पष्ट प्रतिरूपण पर ज़ोर था। जबकि मुगल शैली सूक्ष्म तकनीक, आकृतियों के त्रिआयामी चित्रण से निर्मित यथार्थवादी (ऑप्टिकल रियलिटी) चित्रण पर केंद्रित थी। शाही दरबार के दृश्य, शाही व्यक्तियों के छवि चित्रण, फूल-पौधों, जीव-जंतु का यथार्थवादी चित्रण मुगल चित्रकारों की प्रिय विषयवस्तु थी। इस प्रकार भारत में उस समय मुगल चित्रकला शैली एक नूतन परिष्कृत शैली के रूप में उभरी।

मुगल संरक्षकों ने अपनी विशिष्ट कलात्मक वरीयताओं, विषयवस्तु की रुचि, दार्शनिकता व सौंदर्यबोध गम्य संवेदनशीलता के आधार पर मुगल चित्रकला शैली का विस्तार किया। इस अध्याय में आगे कालक्रमानुसार मुगल चित्रकला शैली के विकास की चर्चा करेंगे।

© NCERT not to be republished

प्रारंभिक मुगल चित्रकला

प्रथम मुगल शासक बाबर वर्तमान के उज़्बेकिस्तान से 1526 में भारत आया। वह तैमूर और चरघटाई तुर्क का वंशज था। उसने ईरान व मध्य एशिया की संस्कृति और सौंदर्यात्मक संवेदनशीलता का सम्मिश्रण किया था। विभिन्न कलारूपों में बाबर की सक्रिय रुचि थी। उसकी ख्याति एक विद्वान और कला पारखी, पांडुलिपियों व वास्तुकला के उदार संरक्षक आदि के तौर पर थी। उसकी आत्मकथा *बाबरनामा* में सम्राट की राजनैतिक गतिविधियों व कलात्मक जुनून का विस्तृत विवरण है। *बाबरनामा* उस प्रेम व आसक्ति को दिखाता है जो एक विदेशी के तौर पर भारत के लिए बाबर के मन में थी। सभी घटनाओं को उत्साहवश विस्तार से लिखने के कारण बाबर ने संस्मरणों को दर्ज करने की परंपरा स्थापित की जिसका भारत में उसके उत्तराधिकारियों ने भी अनुकरण किया। शाही चित्रशाला में रचित पुस्तकें व एल्बम सिर्फ़ सुलिखित ही नहीं, बल्कि चित्रित भी की गईं। ये बहुमूल्य पुस्तकें संग्रहित की गईं और शाही परिवार के उन सदस्यों को भेंट की गईं जो उसके योग्य थे और उनका महत्व समझते थे। छवि चित्रण में बाबर की गहरी रुचि का ज़िक्र उसके संस्मरणों में मिलता है। उसके संस्मरण में चित्रकारों के उल्लेख के बीच बिहज़ाद का ज़िक्र आता है। बिहज़ाद के चित्र सुंदर होते थे पर वह चेहरों का उत्तम चित्रण नहीं

तैमूर के दरबार के राजकुमार, अब्द उस समद, 1545–50 ब्रिटिश संग्रहालय, लंदन

not to be republished © NCERT

करता था, बल्कि दोहरी ठुड्डी वाले चेहरों को काफी लंबा करके दाढ़ी का आकर्षक चित्रण करता था। बिहज़ाद ईरान की चित्रकला शैली का मुख्य चित्रकार था। हेरात (वर्तमान में अफगानिस्तान में स्थित) उत्कृष्ट-संयोजन व आकर्षक रंग छटा के लिए जाना जाता था। चित्रकार के तौर पर शाह मुज़फ़्फ़र का ज़िक्र भी आता है जिसे बाबर केशसज्जा के आकर्षक चित्रण करने वाला उत्कृष्ट चित्रकार मानता था। हालाँकि बाबर को भारतीय भूमि पर ज़्यादा समय रहने का अवसर नहीं मिला और जल्दी ही उसकी मृत्यु हो गई और उसके उत्तराधिकारियों ने भारत को अपनाकर उस पर शासन किया।

बाबर का पुत्र हुमायूँ 1530 में भारत का शासक नियुक्त हुआ पर दुर्भाग्यवश प्रतिकूल राजनैतिक स्थितियों की वजह से उसके जीवन में काफी उतार-चढ़ाव आए। अफगान शासक शेरखान (शेरशाह) ने उसकी गद्दी छीन ली। हुमायूँ ने पर्शिया (फ़ारसी) के सफ़ाविद दरबार में वहाँ के शासक शाह तहमास की शरण ली। यद्यपि यह घटना उसके राजनैतिक शासन में अगौरवशाली है, परंतु पांडुलिपि व चित्रकला के इतिहास के लिए हुमायूँ का सफ़ाविद दरबार में शरण लेना सौभाग्यपूर्ण था। अपने इसी निर्वासन के दौरान शाह तहमास के दरबार में ही पांडुलिपि चित्रण व लघु चित्रकला शैली की अप्रतिम आकर्षक कला परंपरा से उसका पहली बार साक्षात्कार हुआ था। दरबार के कुशल चित्रकारों द्वारा शाह तहमास के लिए बनाए गए चित्रों को देखकर हुमायूँ काफी प्रसन्न हुआ। शाह तहमास की सहायता से उसने 1545 में काबुल में अपना दरबार स्थापित किया। हुमायूँ ने राजनैतिक व सांस्कृतिक कार्यभारों के साथ आगे बढ़ते हुए उदार और मिलनसार शासक के रूप में अपनी पहचान बनाई। शाही दरबार में होने वाले चित्रण व चित्रकारों से वह काफी प्रभावित था और भारत में भी ऐसी कार्यशाला निर्मित करने की आकांक्षा रखता था। भारत में अपना शासन पुनः स्थापित करते ही उसने वहाँ के मुख्य चित्रकारों को अपने दरबार में बुला लिया। उसने दो फ़ारसी चित्रकार, मीर सैयद अली और अब्द उस समद, को अपने दरबार में स्टूडियो स्थापित करने और शाही चित्र बनाने के लिए आमंत्रित किया। ध्यान देने योग्य बात यह है कि ये दोनों चित्रकार विशेष रूप से छवि चित्रण के लिए जाने जाते थे और इन्हें विशेष सम्मान प्राप्त था।

तूतीनामा— लड़की और तोता, 1580–85, चेस्टर बीटी लाइब्रेरी, डबलिन

पुस्तक प्रेमी व विवेकशील हुमायूँ का शासन काल चित्रकला व सुलेख कला के ज़ोरदार संरक्षण के साथ शुरू हुआ। उसके शासन काल से हमें बहुत स्पष्ट चित्रण व लिखित दस्तावेज़ मिलते हैं जो इस तथ्य का प्रमाण देते हैं कि हुमायूँ

की कलात्मक संग्रह व शाही चित्रशाला बनाने में गहरी रुचि थी। यह हुमायूँ की कलात्मक अभिरुचि का संकेत देता है। इसके साथ ही उसके कला पारखी व्यक्तित्व की झलक भी दिखाई देती है। उसने 'निगार खाना' (चित्रों की कार्यशाला) स्थापित किया, जो उसके पुस्तकालय का हिस्सा था। भारत में उसकी चित्रशालाओं के आकार, प्रकार व चित्रकारों की विस्तृत जानकारी नहीं मिलती है। लेकिन यह तथ्य ज्ञात है कि 'हम्ज़ानामा' का चित्रण उसने शुरू करवा दिया था जिसे उसके पुत्र व उत्तराधिकारी अकबर ने जारी रखा।

जब हम मुगल कालीन लघु चित्रकला शैली के शुरुआती दौर के एक असाधारण चित्र *प्रिंसेज ऑफ़ द हाउस ऑफ़ तैमूर* (1545–50) का अध्ययन करते हैं तो उसके आकार, जटिल संरचना व उसमें ऐतिहासिक छवियों के चित्रण को देखकर आश्चर्यचकित रह जाते हैं। यह चित्र सफ़ाविद चित्रकार अब्द उस समद द्वारा कपड़े पर जलीय रंगों से चित्रित किया गया है। शाही परिवार के सम्मानित संग्रह में संरक्षित इस चित्र में आने वाले विभिन्न काल के मुगलवंशियों की मूल छवि चित्रित की गई है। हुमायूँ काल में चित्रित इन चित्रों पर दोबारा बनाए गए अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ के चित्रण में छवियाँ काफी समानता लिए हुए मुखर हैं।

ग्वालियर के किले का निरीक्षण करते बाबर, भूरे, बाबरनामा, 1598, राष्ट्रीय संग्रहालय, नयी दिल्ली

खुले परिदृश्य वाले चित्र जिनमें पेड़-पौधे, जीव-जंतु व शाही शादी, मुगल वंश के पूर्वजों का चित्रण किया जाता था, उसका अनुकरण हुमायूँ के बाद भी जारी रहा। हुमायूँ इस प्रकार के चित्रों का संरक्षक था। इन चित्रों का प्रारूप, विषयवस्तु, आकृतियाँ और रंग संयोजन पूरी तरह फ़ारसी शैली में होते थे। इस बिंदु पर हम कह सकते हैं कि इन चित्रों में भारतीय शैली का विशेष प्रभाव नहीं है। पर जल्द ही चित्रों की भाषा बदलनी शुरू होती है और विकसित होती हुई अनूठी मुगल शैली के साथ विशिष्ट शाही अभिरुचि का सामंजस्य होने लगता है।

हुमायूँ द्वारा शुरू की गई चित्रकला की परंपरा और उनके प्रति लगाव को उनके पुत्र अकबर (1556–1605) ने बरकरार रखा। अकबर के दरबार के इतिहासकार अबुल फ़ज़ल ने कला के लिए अकबर के जुनून का उल्लेख किया है। वह बताता है कि सौ से भी अधिक चित्रकार उसकी शाही चित्रशाला में नियुक्त किए गए थे। इसमें उस समय के सर्वाधिक कुशल फ़ारसी और देशी भारतीय चित्रकार शामिल थे। इससे भारतीय और फ़ारसी चित्रकारों का मेलजोल हुआ जिसने एक विशिष्ट कला शैली के विकास में योगदान दिया। इन कलाकारों ने एक साथ मिलकर महत्वाकांक्षी योजनाओं पर काम शुरू किया जिससे दृश्यभाषा और विषयवस्तु

© NCERT not to be republished

को लेकर नये मानक स्थापित हुए। यह माना जाता है कि अकबर को पढ़ने-लिखने में परेशानी होती थी (डिस्लेक्सिया) जिससे पांडुलिपि चित्रण का महत्व बढ़ गया। उसके संरक्षण से पांडुलिपि के अनुवाद और चित्रण की मौलिक परियोजनाएँ पूर्ण की गईं।

उसकी योजनाओं में सबसे पहला कार्य अपने पिता की कलात्मक विरासत *हम्ज़ानामा* के चित्रण कार्य को जारी रखना था। *हम्ज़ानामा* पैगंबर मोहम्मद के चाचा हम्ज़ा के वीरतापूर्ण कामों का चित्रित ग्रंथ है। अकबर को हम्ज़ा की कहानियाँ सुनने में आनंद आता था। हम्ज़ा मध्य पूर्व के देशों के जन सामान्य व बुद्धिजीवियों के बीच लोकप्रिय चरित्र थे जिनकी कहानियाँ व्यावसायिक कथावाचक ज़ोर से सुनाते थे। हम्ज़ा के विवरण की स्पष्ट झलक के लिए लिखित पन्नों के साथ-साथ चित्र भी चित्रित किए जाते थे। राजा को चित्रांकित विवरण तथा *हम्ज़ानामा* के पाठ सुनने, दोनों में गहरी रुचि थी। इन चित्रों के विशिष्ट उद्देश्य के कारण इनका आकार बड़ा है। इनकी सतह कागज़ के ऊपर चिपकाए गए कपड़े की बनी है। जिसके ऊपर कथावाचक के लिए विवरणात्मक गद्य लिखा गया है। इसके ऊपर जलीय और अपारदर्शी रंगों की (गाउच) तकनीक इस्तेमाल की गई है।

ऐसा लगता है कि मुगल चित्रकला विभिन्न कलात्मक परंपराओं से प्रेरित कलाकारों का सामूहिक कार्य है। मुगल चित्रकला में आसपास मौजूद प्रकृति से ही फूल-पत्ती, पेड़-पौधों व जीव-जंतु के अंकन की छवि ली गई है। *हम्ज़ानामा* के चित्रित पन्ने पूरी दुनिया के विभिन्न कला संग्रहों में हैं। यह लिखित *हम्ज़ानामा* 14 खंड में है। इसके 1400 पन्नों को चित्रित करने में करीब 15 वर्ष लगे थे। इस विशाल योजना की तिथि 1567–82 मानी गई है। यह दो फ़ारसी कुशल चित्रकार मीर सैयद अली और अब्द उस समद के निरीक्षण में चित्रित की गई।

हम्ज़ा के जासूसों का कैमूर शहर पर हमला, 1567–82, एप्लाइड आर्ट्स संग्रहालय, विएना

हम्ज़ानामा के चित्र हम्ज़ा के जासूसों का कैमूर शहर पर हमला में जगह का सावधानीपूर्वक उपयोग किया गया है तथा दृश्यों का स्पष्ट विभाजन किया गया है कि जिससे उसे आसानी से देखा व समझा जा सकता है। इस प्रकार चित्र में बहुत-सी गतिविधियाँ घटित हो रही हैं और तीखे-चटख रंगों का प्रयोग किया गया है। इस प्रकार चित्र की जीवंतता को दर्शाया गया है जिसमें हम्ज़ा के जासूस कैमूर शहर पर हमला कर रहे हैं। पेड़-पौधों, पत्तियों व अन्य आकार को सशक्त बाह्य रेखांकन से स्पष्ट किया गया है। ज़्यादातर चेहरे पार्श्वकार अंकित किए गए हैं, पर तीन-चौथाई चेहरे भी दिखाए गए हैं। फ़र्श, खंभों और बुर्ज पर उत्कृष्ट घने जटिल पैटर्न के अंकन पर फ़ारसी प्रभाव दिखता है। इसी तरह

चट्टानों और चौपाया पशुओं के चित्रण पर भी फ़ारसी प्रभाव दिखाई देता है, जबकि वृक्ष, लताएँ और चटख लाल-पीले रंगों की समृद्ध रंग योजना भारतीय है।

अकबर ने सांस्कृतिक एकीकरण के लिए कई हिंदू ग्रंथों का अनुवाद करवाया। उसने कई महत्वपूर्ण संस्कृत ग्रंथों का फ़ारसी भाषा में अनुवाद और चित्रण करवाया। हिंदू महाकाव्य *महाभारत* का फ़ारसी में अनुवाद और चित्रण भी इसी काल में हुआ जिसे *रज़्मनामा* के नाम से जाना जाता है। इसका चित्रण 1589 में कुशल चित्रकार दसवंत के निरीक्षण में संपूर्ण हुआ। यह पांडुलिपि खूबसूरत सुलेख में लिपिबद्ध है व इसमें 169 चित्र हैं। इसी समय *रामायण* का भी अनुवाद व चित्रण हुआ। गोवर्धन और मिस्किन जैसे चित्रकार उनके दरबार के उत्कृष्ट दृश्यांकन के लिए सम्मानित किए गए। एक असाधारण पांडुलिपि *अकबरनामा* अकबर की व्यक्तिगत व राजनैतिक ज़िंदगी के विस्तृत विवरणों पर आधारित थी और सबसे कीमती योजनाओं में से एक थी।

अकबर स्वयं व्यक्तिगत रूप से चित्रकारों से मिलता-जुलता था और उनके कार्यों का निरीक्षण एवं मूल्यांकन करता था। अकबर के संरक्षण में मुगल चित्रकला में विभिन्न विषयवस्तु का अंकन हुआ जिसमें राजनैतिक विजय, दरबार के मौलिक दृश्य, धर्म निरपेक्ष ग्रंथ, महत्वपूर्ण व्यक्तियों की छवियों के साथ-साथ हिंदू पौराणिक, फ़ारसी व इस्लामिक विषय शामिल थे। भारत के लिए सम्मान व भारतीय शास्त्रों के प्रति अकबर के आकर्षण ने उसे देश का लोकप्रिय शासक बनाया।

अकबर के दरबार में यूरोपवासियों के आवागमन से उस समय के चित्रों में वास्तविकता की ओर झुकाव देखने को मिलता है। इस सदंर्भ में *मेडोना एंड चाइल्ड* (1580) आरंभिक मुगल शैली का एक महत्वपूर्ण चित्र है जो अपारदर्शी जलीय रंगों से कागज़ पर चित्रित है। मेडोना यहाँ एक असाधारण विषय है जो कि बाईज़ेनटाईन कला, यूरोपीय शास्त्रीय कला और इसके पुर्नजागरण को मुगल चित्रशाला तक लाती है जहाँ वह रूपांतरित होकर पूरी तरह एक अलग दृश्य में परिवर्तित हो जाती है। वर्जिन मेरी शास्त्रीय तरीके से सुसज्जित है। माँ और बच्चे के बीच का गहरा लगाव यूरोपीय पुर्नजागरण के मानवतावादी दृष्टिकोण से प्रभावित है। शिशु की शारीरिक संरचना तथा कुछ अन्य विवरण, जैसे— पंखा व आभूषण आदि पूरी तरह भारतीय परिवेश से जुड़े हैं।

अकबर की कला में रुचि से प्रेरित कई अन्य अधीनस्थ शाही दरबारों ने भी इस शौक को अपनाया। अभिजात्य परिवारों के लिए कई उत्कृष्ट चित्र निर्मित किए गए, जिन्होंने मुगल दरबार की चित्रशाला की अनुकृति करने की कोशिश की और क्षेत्रीय रस में विशिष्ट विषयों और दृश्य को प्रस्तुत किया।

अकबर ने मुगल चित्रकला शैली के नए मानक बनाए। उसने एक अनौपचारिक ढाँचा बनाया जिसे उसके पुत्र जहाँगीर (1605–27) ने नई ऊँचाइयाँ प्रदान कीं।

© NCERT not to be republished

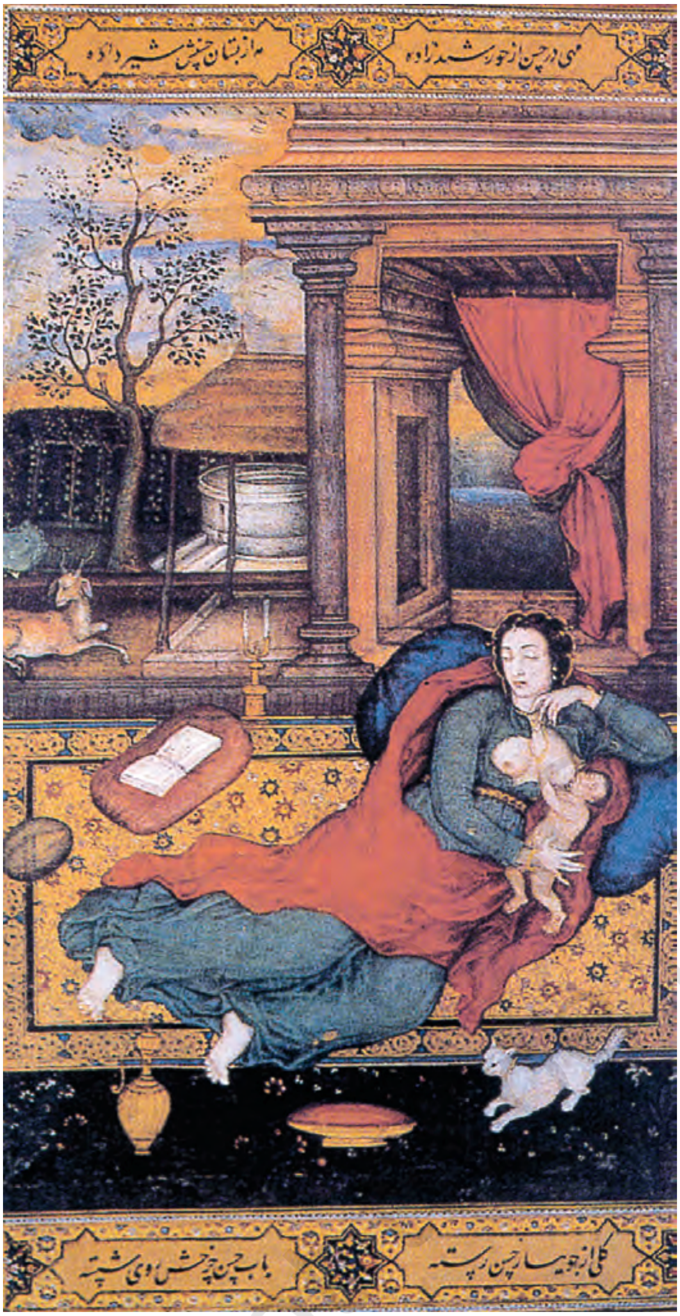

मेडोना एंड चाइल्ड, बसावन, 1590, सैन डिएगो कला संग्रहालय, कैलिफ़ोर्निया

शहज़ादे सलीम (जहाँगीर) ने बहुत कम उम्र से कला में रुचि लेनी शुरू कर दी। अपने पिता अकबर के विपरीत (जिन्होंने राजनैतिक व धार्मिक महत्व के ग्रंथों पर चित्र और पांडुलिपियाँ बनाने का काम किया) जहाँगीर जिज्ञासु स्वभाव का था और उसने चित्रकारों को गहन निरीक्षण व उत्कृष्ट विवरणों के चित्रण के लिए प्रेरित किया।

जहाँगीर ने प्रसिद्ध चित्रकार अका रिज़ा और उसके पुत्र अबुल हसन को नियुक्त किया। अकबर की औपचारिक शाही चित्रशाला होने के बावजूद भी कला के शौकीन संरक्षक जहाँगीर ने पिता के साथ-साथ अपनी स्वयं की भी चित्रशाला बनाई। इलाहाबाद से लौटने और मुगल सिंहासन हासिल करने के बाद शहज़ादे सलीम को जहाँगीर के नाम से जाना गया। जहाँगीर का अर्थ है— दुनिया पर कब्ज़ा। जहाँगीर के संस्मरण *तुल्क-ए-जहाँगीरी* में कला में उसकी गहन रुचि तथा वैज्ञानिक शुद्धता का विवरण है। इसके साथ ही चित्रण में उसकी सर्वाधिक दिलचस्पी और इसके लिए किए गए प्रयासों का भी विवरण है। उसके संरक्षण में मुगल चित्रकला शैली ने उच्चतम दर्जे की वास्तविकता व वैज्ञानिक शुद्धता हासिल की। उसके द्वारा करवाए गए प्रकृति और आसपास के लोगों के चित्रण में उसकी जिज्ञासा और आश्चर्य की झलक दिखाई देती है।

अकबर की चित्रशाला में जहाँ चित्र बहुत अधिक संख्या में निर्मित किए जाते थे वहीं जहाँगीर की चित्रशाला में एक ही चित्रकार के उत्कृष्ट गुणवत्ता के साथ कम संख्या में चित्रण करने पर ज़ोर दिया गया। मुरक्का चित्रों ने जहाँगीर के संरक्षण में लोकप्रियता प्राप्त की। ये संग्रहित किए गए एल्बम में एकल चित्र होते थे। चित्रों के हाशिये सुनहरे रंग या सोना मिश्रित रंगों से उभारे जाते थे। इन हाशियों में फूल-पत्ती व कभी मानव आकृतियाँ भी चित्रित रहती थीं। अकबर के काल में प्रचलित युद्ध के दृश्य, छवि चित्रण, विवरण और कहानियों

के आख्यान के चित्रण की जगह अब भव्य समृद्ध दरबार के दृश्यों के सूक्ष्म विवरण व परिष्कृत चित्रण, अभिजात्य शाही छवियाँ, चारित्रिक लक्षण व फूल-पौधे और जीव-जंतु के विशिष्ट अंकन ने ले ली।

जहाँगीर के दरबार में आने वाले यूरोपीय व्यक्तियों द्वारा उसे उपहार में यूरोप की उच्च स्तरीय कला के चित्र व सजावटी वस्तुएँ भेंट की जाती थीं। इस प्रकार अंग्रेज़ व्यापारियों के संपर्क में आने से जहाँगीर यूरोपीय कला की ओर आकर्षित हुआ और अपने संग्रह में ऐसी अधिक वस्तुएँ संग्रहित करने के लिए उत्सुक हुआ। कई ईसाई धर्म के धार्मिक उत्सवों के चित्र भी जहाँगीर के दरबार में चित्रित किए गए। इस सांस्कृतिक और कलात्मक संसर्ग के कारण यूरोपीय कला संवेदनाओं ने प्रचलित भारत-ईरानी शैली के ऊपर अपना प्रभाव डालना शुरू किया जिसके कारण जहाँगीर कालीन कला ज़्यादा आकर्षक और जीवंत हो गई। चित्रों के संयोजन में स्थानिक गहराई व जीवन का स्वाभाविक चित्रण उच्च मापदंड बन गया जिसे कला के इस संवेदनशील संरक्षक ने अपने जीवन काल में स्थापित किया। मुगल चित्रशाला के कलाकारों ने सृजनात्मक तरीके से देशी, फ़ारसी व यूरोपीय, तीनों शैलियों का सम्मिश्रण करके मुगल चित्रों को अपने समय की जीवंत शैली का उद्गम बनाया। यह अपनी तरह की एक विशिष्ट शैली भी बनी।

एक राजकुमार और एक साधु, अमीर शाही के दीवान से जिल्द के पन्ने, 1595, आगा खान संग्रहालय, कनाडा

अबुल हसन और मनोहर द्वारा 1620 में चित्रित *जहाँगीरनामा* (कई संग्रहों में बिखरा हुआ) का चित्र 'दरबार में जहाँगीर' एक विलक्षण चित्र है। चित्र के केंद्र में सबसे ऊँचे स्थान पर जहाँगीर हैं और उसकी आँखें चमकदार स्पष्ट रंगों से घिरे शानदार सफ़ेद स्तंभों और सिर के ऊपर की शानदार छतरी की ओर जाती हैं। दायीं ओर हाथ जोड़े खुर्रम उपस्थिति में खड़ा है और शुजा भी उसके बराबर में है। शुजा, मुमताज महल का पुत्र है जिसकी परवरिश दरबार में नूरजहाँ ने की है। दरबारियों को

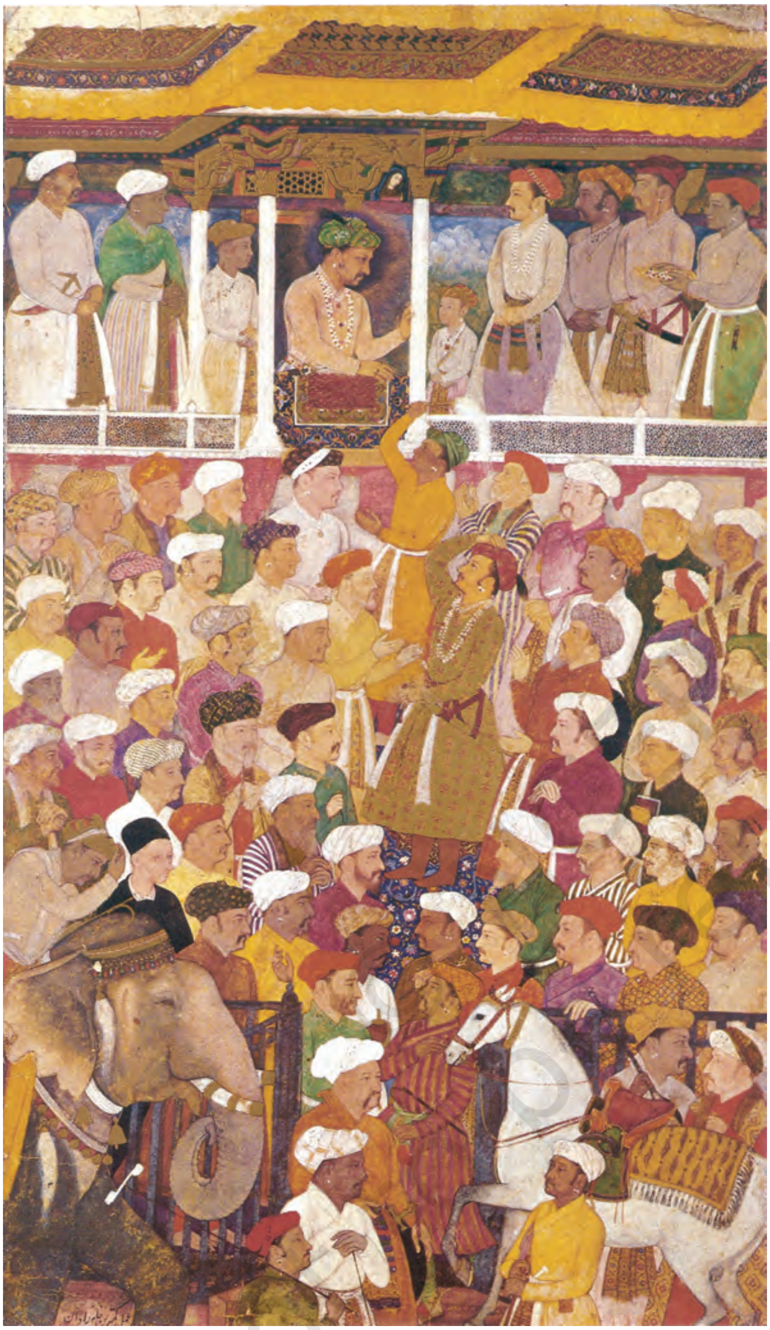

दरबार में जहाँगीर, जहाँगीरनामा, अबुल हसन और मनोहर, 1620, ललित कला संग्रहालय, बोस्टन

उनके ओहदे के अनुसार स्थान दिया गया। छवियों के सही और वास्तविक चित्रण की वजह से उन्हें आसानी से पहचाना जा सकता है। दर्शकों के बीच जाने-माने अन्य कुलीन लोगों के साथ पादरी फ़ादर कोरसी मौजूद हैं। उनका नाम अंकित है जिससे आसानी से उनकी पहचान की जा सकती है। हाथी-घोड़ों की उपस्थिति इस आयोजन को अनुष्ठानिक बनाती है, जैसे— जहाँगीर के अभिवादन के लिए जुड़े हुए हाथ और झुके हुए चेहरे।

जहाँगीर का स्वप्न (1618–22) अबुल हसन द्वारा चित्रित किया गया। जिसे 'नादिर अल ज़मान' खिताब से नवाज़ा गया था। जिसका अर्थ होता है— 'समय का आश्चर्य'। यह सम्राट के सपने को संदर्भित करता है, जिसमें वह फ़ारसी सफ़ाविद सम्राट शाह अब्बास से मिलने गया जिसके अधीन कांधार क्षेत्र था, जिसे पाने की कामना सम्राट जहाँगीर रखते थे। इस शुभ स्वप्न को चित्रित करने के लिए उसके पास दरबारी चित्रकार अबुल हसन थे। इस चित्र में राजनैतिक कल्पना के कारण संयोजन में जहाँगीर की उपस्थिति सबसे अधिक हावी है। जहाँगीर से गले मिलते हुए फ़ारसी शाह दुर्बल और दयनीय दिखते हैं। चित्र में राजा पृथ्वी पर खड़े हैं और उनके बीच में भारत और मध्य पूर्व का अधिकांश हिस्सा दिख रहा है। इसी चित्र में दो जानवर शांति से सो रहे हैं। हालाँकि इस चित्रण में मौजूद संकेत देखने वालों को आसानी से समझ में आते हैं जिसमें शक्तिशाली सिंह पर जहाँगीर व विनम्र भेड़ पर शाह अब्बास खड़े हैं। दोनों एक शानदार सूरज और चाँद के सुनहरे दीप्त को साझा कर रहे हैं, जिसे दो पंखोंयुक्त दूतों ने थामा हुआ है। जो मुगल दरबार के यूरोपीय कला रूपांकनों और बिंबों से प्रभावित होने का संकेत है।

जहाँगीर का सपना, अबुल हसन, 1618–22, स्मिथसोनियन इंस्टीट्यूशन, वाशिंगटन डी.सी.

जहाँगीर एक रेतघड़ी के ऊपर, बिचित्र, 1625, स्मिथसोनियन इंस्टीट्यूशन, वाशिंगटन डी.सी.

रेतघड़ी (आवरग्लास) पर विराजमान जहाँगीर का चित्र, दरबारी चित्रकार बिचित्र द्वारा चित्रित किया गया। यह चित्र 1625 में बनाया गया था। उसमें प्रतीकों का सृजनात्मक उपयोग किया गया था। चित्र में जहाँगीर के दायीं तरफ कोने में चित्रकार को अपने महान सम्राट को चित्र भेंट करते हुए देखा जा सकता है।

फ़ारसी सुलेख से चित्र का ऊपरी और नीचे का हिस्सा सुसज्जित है, जिसकी पंक्तियों में यह वर्णित है कि इस दुनिया के शाह उसके सामने खड़े हो सकते हैं क्योंकि जहाँगीर को फकीरों को रखना पसंद है। यह चित्र ऑटोमन सुल्तान के चित्र से मिलता-जुलता है, जिसमें इंग्लैंड के राजा जेम्स प्रथम दाएँ कोने में खड़े हुए सम्राट को उपहार पेश कर रहे हैं। जहाँगीर, चिश्ती दरगाह के शेख हुसैन को पुस्तक भेंट कर रहे हैं। शाह हुसैन उस शेख सलीम का उत्तराधिकारी है जिसके सम्मान में अकबर ने अपने पुत्र का नाम सलीम रखा था।

जहाँगीर का पुत्र शहज़ादा खुर्रम (1628–58) शाहजहाँ के नाम से दिल्ली के ताज का उत्तराधिकारी बना। उसने सिर्फ़ राजनैतिक रूप से स्थिर साम्राज्य ही नहीं प्राप्त किया, बल्कि उत्कृष्ट कलाकार और चित्रशाला को भी अधिगृहीत किया। शाहजहाँ ने कलाकारों को ऐसी शानदार कृतियाँ बनाने के लिए प्रेरित किया जिसमें कल्पना और प्रलेखन का समावेश हो। स्वाभाविक और यथार्थवादी चित्रण के बजाय आदर्शीकरण और अधिक से अधिक शैलीकरण को वरीयता दी गई। उसकी देखरेख में बनी आकृतियाँ प्रभावशाली व उत्कृष्ट सौंदर्यीकरण पर केंद्रित थीं जो कि रत्नों से सुसज्जित, जैसे— रंगों, सही प्रस्तुतीकरण और जटिल छवि रेखांकन द्वारा बनाई गई थी। चित्रों में उच्च अवधारणाओं को बहुत प्रमुखता दी गई और बहुत सूक्ष्मता से ऐसे दृश्य रचे गए जिसमें एकल चित्र से बहुत-से अर्थ बाहर आएँ। उनके समय में चित्रित चित्रों में राजसी छवि निर्मित की गई जिसमें हीरे-जवाहरात के प्रति उनके अगाध प्रेम को दर्शाया गया। इसी छवि को वह अपने बाद छोड़ना चाहते थे। गौरवशाली उपाधियों के साथ ऐसे शाही छवियों को चित्रित किया गया जो स्वयं सम्राट के व्यक्तित्व को दर्शाते थे।

पदशाहनामा (राजा का इतिहास) दरबार की चित्रशाला के अंतर्गत चित्रित सबसे अधिक समृद्ध लुभावनी योजनाओं में से एक था। यह एक असाधारण पांडुलिपि है, जिसने भारतीय लघु चित्रकारी में ऊँचाइयों को पाया है। इस काल में मुगल चित्रकला ने शाही, ऐतिहासिक और रहस्यवादी विषयों को चित्रित करने के लिए सम्मोहक रंगों और जटिल संयोजनों का विभिन्न दृश्यों में प्रभावशाली प्रयोग किया।

मुगल चित्रकला ने अपने समय की समकालीन दुनिया की विकसित कला परंपराओं के शानदार समावेश को अपनी शैली में प्रस्तुत किया था। उसने उस समय के यूरोपीय कलाकारों को प्रेरित करना शुरू कर दिया। प्रसिद्ध यूरोपीय चित्रकार रेम्ब्रा बहुत गहराई से मुगल दरबार की चित्रकला से प्रभावित था और उसने रेखाओं की नज़ाकत पर महारत पाने के लिए कई भारतीय चित्रों का अध्ययन किया। इस अध्ययन से उसने यह स्पष्ट किया कि विश्व कला के परिदृश्य में मुगल चित्रकला का एक विशिष्ट स्थान है।

बगीचे में साधुओं के साथ दारा शिकोह, बिचित्र, आरंभिक सत्रहवीं शताब्दी चेस्टर बीटी लाइब्रेरी, डबलिन

शाहजहाँ के उत्तराधिकारी पुत्र दारा शिकोह को साम्राज्य का उत्तराधिकारी नहीं मिला। वह एक उदार अपरंपरागत मुगल था। सूफी रहस्यवाद के लिए दारा की प्रतिबद्धता और वेदांतिक दर्शन में उसकी गहरी रुचि उल्लेखनीय है। 'दारा शिकोह विद सेजेज इन गार्डेन' 1635 में चित्रित असाधारण चित्र ने उसके व्यक्तित्व को अमर कर दिया। अपने लोगों द्वारा प्यार किए जाने वाला विद्वान, संस्कृत समेत अन्य कई भाषाओं के जानकार व्यक्तित्व का अंकन इस चित्र का केंद्रीय विषय था। वह कवि व कला पारखी था। उसने अपनी पत्नी को भेंट करने के लिए चित्रों का एक विशेष एल्बम बनवाया। दुर्भाग्यपूर्वक दारा के साहित्य व दर्शन के शौक के कारण उसके व्यक्तित्व को गलत समझा गया। उसकी विनम्रता को नकारात्मक माना गया और उसमें प्रशासन के लिए निपुणता की कमी समझी गई। दारा अपने भाई औरंगज़ेब से बिलकुल अलग था। वह उदार, दार्शनिक और वैचारिक व संघर्ष के मुद्दों पर सबको मिलाकर चलने वाला समझौतावादी दृष्टिकोण रखता था।

शाहजहाँ के जीवनकाल में ही उत्तराधिकार की जंग में दारा शिकोह अपने भाई औरंगज़ेब से पराजित हो गया। आलमगीर औरंगज़ेब जब सत्ता में आया उसने उस समय के राजनैतिक परिदृश्य को अकबर के समकालीन दिखाने का प्रयास किया। भारत के दक्कन में संघर्षों

और विजय की शृंखला ने मुगल साम्राज्य को वापस अपनी जगह पर ला दिया। उसका ध्यान मुगल साम्राज्य के विस्तार और अपने नेतृत्व में एकीकरण पर केंद्रित था। औरंगज़ेब ने मुगल चित्रशाला में चित्रों को निर्मित करने के काम को आगे नहीं बढ़ाया। हालाँकि शाही चित्रशाला को तुरंत बंद नहीं किया गया और सुंदर चित्रों का चित्रण जारी रहा।

उत्तरकालीन मुगल चित्रकला

कला के प्रोत्साहन और संरक्षण में सतत गिरावट के कारण अति कुशल कलाकारों ने मुगल कार्यशालाओं को छोड़ दिया। इन कलाकारों का प्रांतीय मुगल शासकों ने स्वागत किया। ये राजा मुगल राजवंश की अनुकृति पर अपने राजकुल के गौरव तथा दरबार की कार्यवाही या घटनाओं को चित्रों में प्रदर्शित करना चाहते थे।

बहादुर शाह ज़फर, 1838, फ़ॉग म्यूज़ियम ऑफ़ आर्ट, कैम्ब्रिज, ब्रिटेन

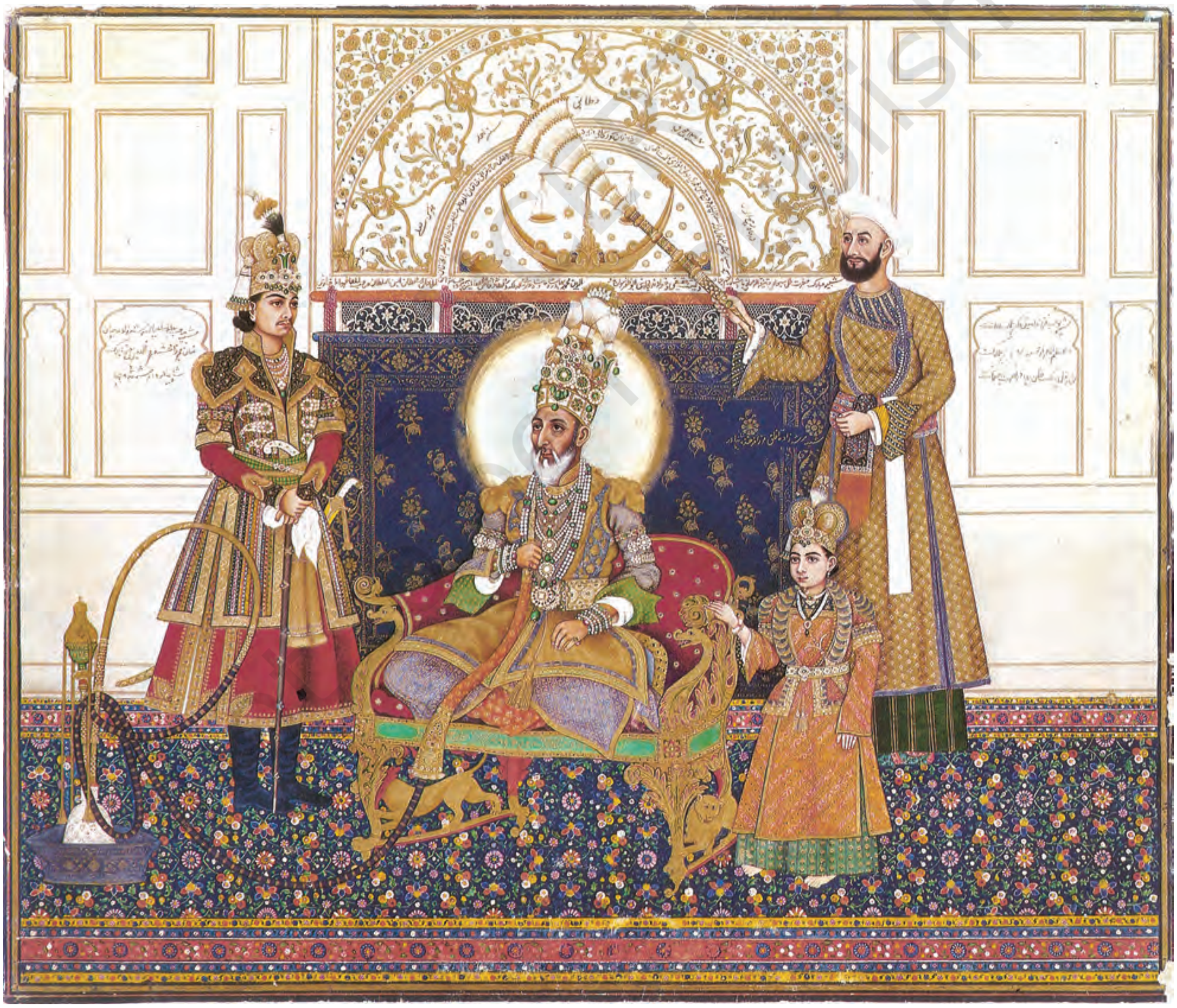

हालाँकि मोहम्मद शाह रंगीला, शाह आलम द्वितीय और बहादुर शाह ज़फर के समय में कुछ उत्कृष्ट चित्र बने, लेकिन वे चित्र मुगल लघु चित्रकला शैली की बुझती शमा की आखरी लौ के समान थे। 1838 में 'बहादुर शाह ज़फर' शीर्षक का चित्र बनाया गया। यह चित्र अंग्रेज़ों द्वारा उन्हें बर्मा से देश निकाला दिए जाने के करीब दो दशक पहले बनाया गया था। 1857 के भारतीय विद्रोह की विफलता के बाद अंग्रेज़ यह सुनिश्चित करना चाहते थे कि दिल्ली के आसपास कोई मुगल शासक अधिकार जताने वाला न रहे। बहादुर शाह ज़फर अंतिम मुगल बादशाह था जो कवि, विद्वान और कला पारखी था।

नए राजनीतिक माहौल, अस्थिर स्थानीय रजवाड़े और अंग्रेज़ों के उत्थान ने भारतीय कला परिदृश्य को फिर से बदल दिया। चित्रकारों की कला नए संरक्षक, उनके सौंदर्य संबंधी सरोकारों, विषयवस्तु की पसंद और चित्रात्मक भाषा के अनुसार ढलने लगी। अन्ततोगत्वा मुगल लघु चित्रकला शैली अन्य प्रांतीय चित्रकला शैली और कंपनी चित्रकला शैली में विलीन हो गई।

मुगल चित्रकला की प्रक्रिया

मुगल लघु चित्रकला शैली के ज़्यादातर चित्र पांडुलिपियों या शाही एल्बम के हिस्से थे अर्थात् दृश्य और प्रारूप में दिए गए स्थान में विषयवस्तु साझा करते थे। किताबें बनाने के लिए पहले हाथ से कागज़ बनाया जाता था और फिर उन्हें पांडुलिपि के आकार के अनुसार काटा जाता था। फिर पृष्ठों पर लिखा जाता था। कलाकार के लिए निर्दिष्ट स्थान छोड़ा जाता था और वह कलाकार को दिया जाता था कि वे लिखी गई विषयवस्तु के अनुरूप चित्र बनाएँ। कलाकार इसके लिए पहले खाका खींचता था फिर तसवीर या चिहारनामा बनाता और अंतिम चरण में रंग भरता था जिसे रंगमिज़ी कहते हैं।

मुगल चित्रकला के रंग और तकनीक

कार्यशालाओं के चित्रकार रंग बनाने की कला में भी माहिर थे। मुगलकालीन चित्र, विशेषकर हस्त निर्मित कागज़ों पर बनाए जाते थे। रंग अपारदर्शी होते थे और प्राकृतिक स्रोतों से पीसकर या मनचाहा रंग बनाने के लिए अन्य रंगों को मिलाकर बनाए जाते थे। रंग गिलहरी या बिल्ली के बच्चों के बालों से बनी तूलिका द्वारा लगाया जाता था। कार्यशाला में चित्र बनाना विभिन्न कलाकारों के सामूहिक प्रयास का परिणाम था। मूल चित्र का खाका बनाना, रंग पीसना, चित्र में रंग भरना और अन्य बारीकियों को जोड़ना आदि काम आपस में बंटे होते थे। सभी कार्य एक ही व्यक्ति द्वारा किए गए हों ऐसी भी संभावना हो सकती थी।

© NCERT not to be republished

अतः शुरुआती मुगल दौर में बनी कलाकृतियाँ कलाकारों के सामूहिक प्रयास का परिणाम थीं। इसमें प्रत्येक कलाकार अपनी क़ाबलियत या सौंपे गए कार्य के अनुसार काम करता था। अभिलेख बताते हैं कि कलाकारों को काम के अनुसार प्रोत्साहन और वेतन में बढ़ोतरी दी जाती थी। अभिलेखों में उत्कृष्ट कलाकारों के नाम शाही कार्यशाला में उनके स्तर के बारे में भी जानकारी देते हैं।

एक बार चित्र के पूरा हो जाने पर उसे एक खास किस्म के बहुमूल्य पत्थर (एगेट) द्वारा घिसा जाता था। इसका उद्देश्य कलाकृति पर पालिश करना, रंगों को पक्का करना और उस पर वांछित चमक लाना होता था।

सिंदूरी रंग हिंगुल से, नीला रंग लाजवर्त से, चमकीला पीला हरताल से, सफ़ेद रंग सीप को पीसकर तथा गहरा काला रंग लकड़ी के कोयले से बनाया जाता था। किसी चित्र को बेशकीमती दिखाने के लिए सोने और चाँदी का चूरा रंगों में मिलाया या चित्रों पर बिखेरा जाता था।

विद्यार्थियों के लिए प्रोजेक्ट

किसी लेखक, कवि या दार्शनिक के लगभग पाँच उद्धरणों का चयन करें। उनका अपनी पसंद की भाषा में अनुवाद करें। मुगल पांडुलिपियों से प्रेरणा लेकर सुलेख शैली और अलंकृत किनारों के साथ अपने अनुवाद की एक पांडुलिपि बनाएँ।

अभ्यास

1. हुमायूँ द्वारा भारत में बुलाए गए दो उत्कृष्ट कलाकारों के नाम बताएँ एवं उनकी उत्कृष्ट रचनाओं की विस्तार से चर्चा करें।
2. अकबर द्वारा शुरू की गई कई कला परियोजनाओं में से अपनी खास पसंद की कला परियोजना पर यह समझाते हुए चर्चा करें कि उसके बारे में आपको क्या पसंद है।
3. मुगल दरबार के कलाकारों की एक विस्तृत सूची तैयार करें तथा उनमें प्रत्येक के एक-एक चित्र की लगभग 100 शब्दों में चर्चा करें।
4. मध्य काल में प्रचलित अपनी पसंद के तीन चित्रों देशज भारतीय, फ़ारसी और यूरोपीय दृश्य तत्वों पर चर्चा करें।

© NCERT not to be republished

नोआस् आर्क

नोआस् आर्क, 1590 में बनी चित्रित पांडुलिपि *दीवाने हाफिज़* का एक उत्कृष्ट चित्र है। इस पांडुलिपि के अलग-अलग पृष्ठ विभिन्न संग्रहालयों में हैं। ऐसा बताया जाता है कि हलके रंगों का यह चित्र अकबर की शाही चित्रशाला के अग्रणी कलाकार, मिस्किन द्वारा बनाया गया है। पैगंबर नूह जहाज़ में हैं और उनके साथ कई जानवरों के जोड़े हैं ताकि ईश्वर द्वारा मनुष्यों के गुनाहों की सज़ा देने के लिए भेजी गई बाढ़ से पैदा हुई तबाही के बाद दुनिया फिर पनप सके और आबाद हो सके।

इस चित्र में इब्लीस को नूह के बेटे जहाज़ से बाहर फेंक रहे हैं जो कि जहाज़ को तबाह करने आया था। चित्र में सफ़ेद और लाल, नीले, पीले रंगों का सूक्ष्म इस्तेमाल आकर्षक है। चित्र में पानी का चित्रण ऊर्ध्वाधर परिप्रेक्ष्य में होने के कारण चित्र में एक विशेष नाटकीय ऊर्जा उत्पन्न करता है। यह चित्र फ़्रीयर गैलरी ऑफ़ आर्ट, स्मिथसोनियन इंस्टीट्यूशन, वाशिंगटन डी.सी., संयुक्त राज्य अमरीका के संग्रह में है।

गोवर्धन पर्वत को उठाते हुए कृष्ण

ऐसा बताया जाता है कि *हरिवंश पुराण* के इस चित्र के अलग-अलग पृष्ठ विभिन्न संग्रहालयों में हैं, मिस्किन (1585–90) द्वारा बनाया गया था। यह चित्र मेट्रोपोलिटन म्यूज़ियम ऑफ़ आर्ट, न्यूयॉर्क, संयुक्त राज्य अमरीका के संग्रह में है। *हरिवंश पुराण* उन कई संस्कृत पांडुलिपियों में से एक है जिसका मुगलों ने फ़ारसी में अनुवाद कराया था। भगवान कृष्ण पर आधारित इस ग्रंथ के फ़ारसी भाषा में अनुवाद की ज़िम्मेदारी अकबर के दरबार के एक कुलीन विद्वान बदायूनी को सौंपी गई थी। यह जानना दिलचस्प होगा कि अकबर के दरबार में एक और प्रसिद्ध विद्वान अबुल फ़ज़्ल के विपरीत बदायूनी अपने कट्टर धार्मिक विचारों के लिए जाना जाता था।

हरि या भगवान कृष्ण ने गोवर्धन पर्वत को अपने सभी अनुयायियों (ग्रामीणों और उनके पशुओं) को एक अन्य शक्तिशाली भगवान, इंद्र, द्वारा भेजी गई मूसलाधार बारिश से बचाने के लिए उठाया था। हरि उस पर्वत को एक विशाल छतरी की तरह उपयोग करते हैं ताकि पूरा गाँव उसके नीचे शरण ले सके।

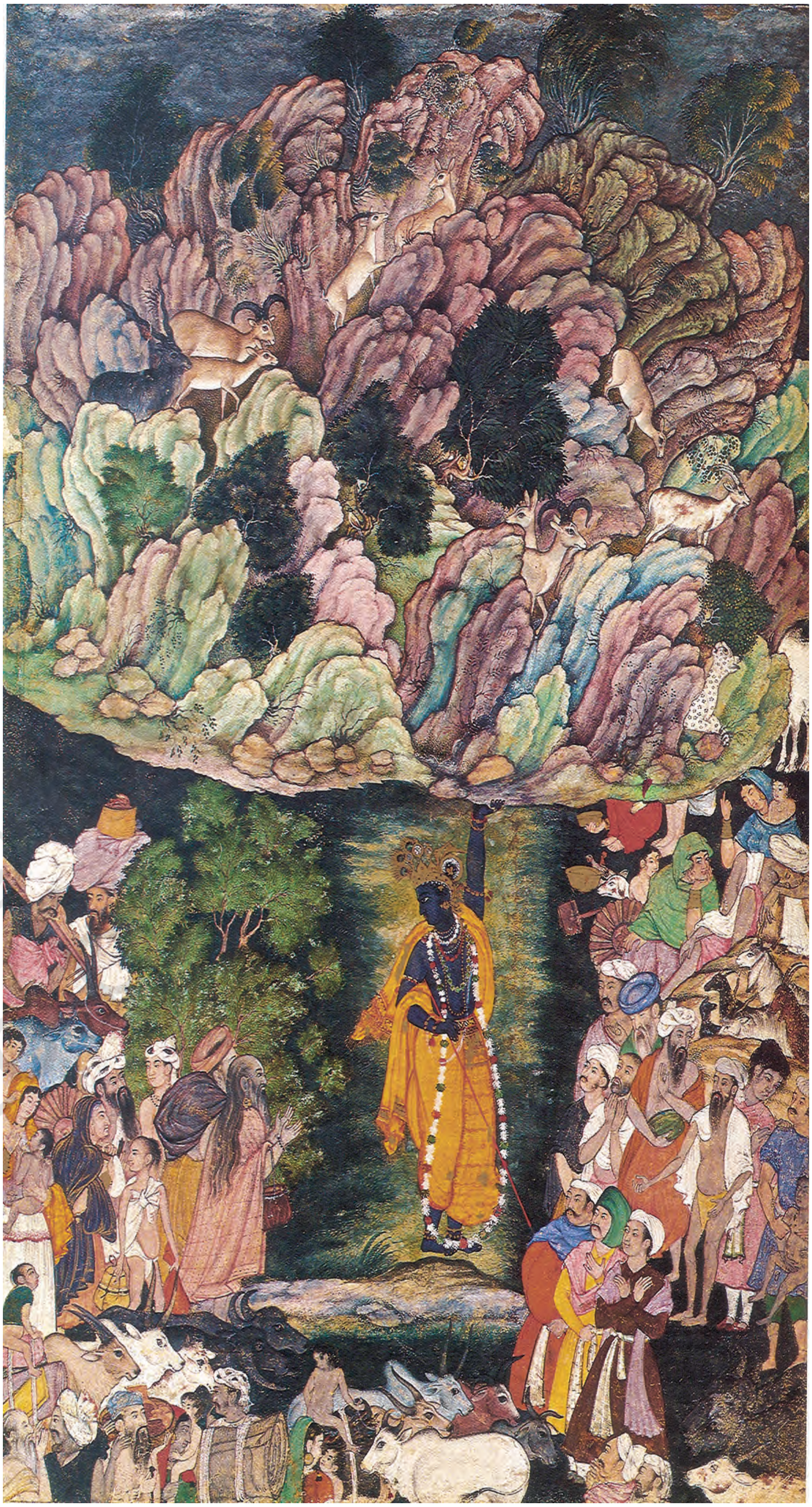

पक्षी-विश्राम पर बाज़

यह चित्र उस्ताद मंसूर द्वारा बनाया गया है। जिसे जहाँगीर ने नादिर उल अस्र की उपाधि से नवाज़ा था। जहाँगीर के पास कई बेहतरीन बाज़ थे और एक उत्साही पारखी की तरह उसने उनका चित्रण कराया। यह चित्र संयुक्त राष्ट्र अमरीका में ओहायो के क्लीवलैंड संग्रहालय में संग्रहित है। इन छवियों को उसकी अधिकारिक जीवनी *जहाँगीरनामा* में शामिल किया गया। फ़ारसी सम्राट शाह अब्बास द्वारा भेंट किए गए एक बाज़ का दिलचस्प संस्मरण जहाँगीर बताते हैं। जहाँगीर उस बाज़ को बिल्ली द्वारा मार दिए जाने पर उसकी स्मृति को भविष्य के लिए सुरक्षित करने के लिए अपने चित्रकारों से चित्रित करवाते हैं।

यहाँ दिखाया गया चित्र 'पक्षी-विश्राम पर बाज़' (1615) मुगल कलाकार उस्ताद मंसूर द्वारा बनाए गए कई चित्रों में से एक है।

© NCERT not to be republished

ज़ेबरा

इस चित्र में तुर्कों द्वारा इथियोपिया से लाया गया ज़ेबरा दिखाया गया है। यह ज़ेबरा मुगल सम्राट जहाँगीर को उनके रईस मीर जाफ़र ने भेंट किया था। जहाँगीर ने इस चित्र पर राज दरबार की भाषा फ़ारसी में लिखा था कि, "यह एक खच्चर है जिसे तुर्क (रुमियां) मीर जाफ़र के साथ इथियोपिया (हबेशा) से लाए थे।" यह चित्र नादिर उल अस्र (अपने समय के प्रतिष्ठित व्यक्ति) उस्ताद मंसूर द्वारा बनाया गया था। *जहाँगीरनामा* में स्पष्ट कहा गया है कि यह जानवर नवरोज़ या नए साल के उत्सव में, मार्च 1621 में, राजा को भेंट किया गया। यह भी कहा गया है कि जहाँगीर ने उसे गौर से जाँचा क्योंकि कुछ का मानना था कि यह एक घोड़ा है जिस पर किसी ने धारिया रंग दी हैं। जहाँगीर ने इसे ईरान के शाह अब्बास को भेजने का निर्णय किया जिसके साथ वह पशुओं और पक्षियों समेत कई दुर्लभ और विशेष उपहारों का आदान-प्रदान किया करता था।

ईरान का शाह भी बाज़ जैसे दुर्लभ उपहार जहाँगीर को भिजवाता था। बाद में इसे शाही एल्बम में जोड़ दिया गया। चित्र के किनारे पर अलंकरण शाहजहाँ के शासन काल में किया गया।

दारा शिकोह की बारात

यह चित्र कलाकार हाजी मदनी द्वारा बनाया गया था। चित्र शाहजहाँ के काल का है, जिसने आगरा में ताजमहल बनवाया था। यह चित्र मुगल बादशाह शाहजहाँ के सबसे बड़े पुत्र दारा शिकोह के विवाह को दर्शाता है। चित्र में मुगल राजकुमार पारंपरिक सेहरे के साथ भूरे रंग के घोड़े पर बैठा है और उसके साथ उसके पिता शाहजहाँ (जिसके सर के चारों तरफ एक चमकता प्रभामंडल है) सफ़ेद घोड़े पर सवार है। बारात का स्वागत संगीत, नाच, उपहार और आतिशबाजी के साथ किया गया है। कलाकार ने बारात का बहुत ही सजीव चित्रण किया है। यह चित्र राष्ट्रीय संग्रहालय, नयी दिल्ली मे संग्रहित है।

दक्कनी चित्रकला शैली

4

दक्कनी चित्रकला के इतिहास को सोलहवीं शताब्दी के अंत से सत्रहवीं शताब्दी के अंत तक देखा जा सकता है— जब मुगलों ने दक्कन पर आधिपत्य स्थापित किया। (इस शैली का प्रभाव उन्नीसवीं शताब्दी के असफिया राजवंश के चित्रकला से लेकर प्रांतीय राज्य के राजाओं और नवाबों तथा हैदराबाद के निज़ाम के अधीनस्थ कई शासकों के काल में देखने को मिलता है।) दक्कनी चित्रकला शैली को लंबे समय तक 'इंडो पर्शियन शैली' समझा जाता था। इसके उद्‌गम का आधार मध्य पूर्वी सफ़ाविद, फ़ारसी, तुर्की चित्रकला शैली या मुगल चित्रकला शैली को माना जाता है।

सुल्तान आदिल शाह द्वितीय तंबूरा बजाते हुए, फ़ारुख बेग, बीजापुर, 1595–1600, राष्ट्रीय संग्रहालय, प्राग, चेक गणराज्य

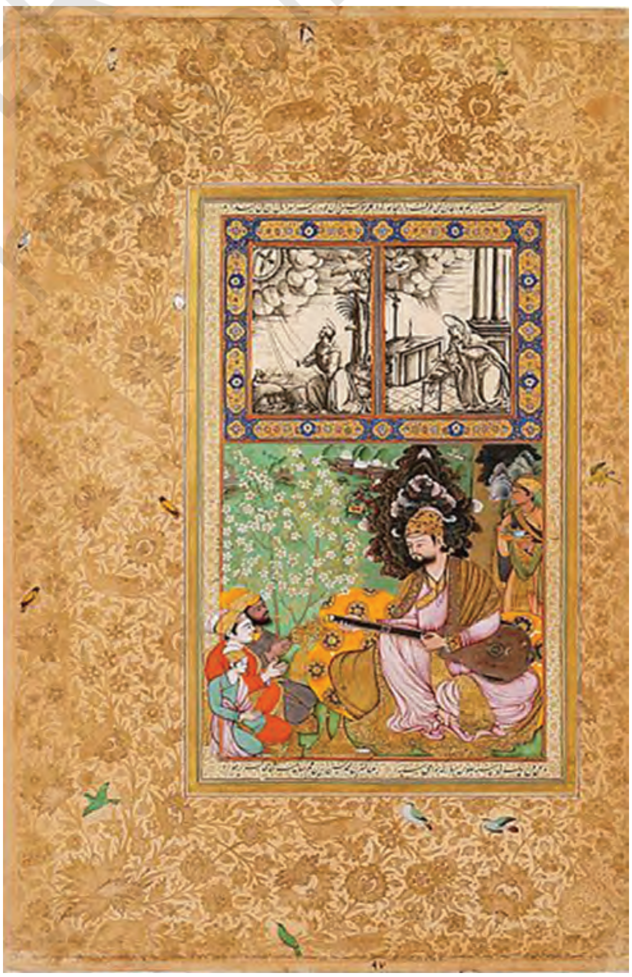

कला इतिहासकारों ने दक्कनी चित्रकला शैली को एक विशिष्ट चित्रकला शैली मानते हुए भी एक स्वतंत्र चित्रकला शैली के तौर पर इसके अस्तित्व को नहीं स्वीकारा। जबकि इस चित्रकला शैली को दक्कन के कई राजाओं का संरक्षण प्राप्त हुआ जिनकी प्रखर राजनैतिक व सांस्कृतिक दृष्टि थी। इन राजाओं ने चित्रकारों को बहाल किया, संरक्षण प्रदान किया और उनकी कलात्मक संवेदनशीलता में वृद्धि करते हुए अपनी शासकीय आवश्यकताओं के अनुरूप चित्रण करवाया।

मानवाकृति का चित्रण और ऐतिहासिक व धार्मिक आकृतियों का चित्रांकन इस समय की कई शैलियों में दिखाई पड़ता है। इन अर्थों में मुगल चित्रकला ही सिर्फ़ विशिष्ट शैली नहीं थी। इस तरह की कलात्मकता सफ़ाविद और ऑटोमन शैली में भी दिखाई देती है। इस शैली के चित्रण उत्कृष्ट हू-ब-हू चित्र के लिए मशहूर थे। कलात्मक विकास विशेषत: एशियन इस्लामिक कला व मुगल कला में बड़े पैमाने पर दिखाई देता है।

विंध्य पर्वतों से दूर दक्षिणी भारत के पठारी क्षेत्रों में सोलहवीं-सत्रहवीं शताब्दी में विभिन्न दक्कनी शासकों के अंतर्गत तत्कालीन क्षेत्रीय व सांस्कृतिक विशेषताओं के

© NCERT not to be republished

साथ आकर्षक, सशक्त चित्रकला शैली का विकास हुआ। बीजापुर, गोलकुंडा और अहमदनगर के शासकों ने चित्रकला की अति परिष्कृत विशिष्ट शैली को विकसित किया। इस चित्रकला शैली की अद्‌भुत रसमयता मधुर रंगों की तीव्रता क्षेत्रीय सौंदर्यबोध से जुड़ी है। चित्रकारों ने घने संयोजन के चित्रों में प्रणय का वातावरण रचा जिसमें सौंदर्य की सहज स्वाभाविक अभिव्यक्ति हुई।

अहमदनगर चित्रकला शैली

दक्कनी चित्रकला के शुरुआती उदाहरण अहमदनगर के हुसैन निज़ामशाह प्रथम (1553–65) के कविता संग्रह से मिलते हैं। बारह लघु चित्रकारियों में अधिकांश चित्रों में युद्ध दृश्यों का चित्रण बिना किसी कलात्मक विशिष्टता के हुआ है। परंतु वे चित्र जिसमें रानी के विवाह का चित्रण हुआ है, उनमें रंगों की भव्यता, रेखांकन की मधुरता से हमें संतुष्टि की अनुभूति होती है। युवती का चित्रण मालवा और अहमदाबाद के प्राक् मुगल चित्रकला से साम्यता रखते हुए उत्तर भारतीय परंपरा में हुआ है। अहमदनगर के इस चित्रण में युवती की वेशभूषा थोड़े बदलाव के साथ उत्तर भारतीय परंपरा में है। जिसमें उसने चोली पहनी हुई है और उसकी लंबी चोटी है जिसके अंत में फूंदने बँधे हैं। शरीर के इर्द-गिर्द से होते हुए नितंब तक लटकते लंबे दुपट्टे का चित्रण दक्षिण भारतीय शैली में है जो लेपाक्षी के भित्ति चित्रों में दिखाई देता है। रंग योजना निश्चित तौर पर उत्तर भारतीय पांडुलिपि चित्रण से भिन्न है जो व्यापक रूप से मुगल चित्रशाला से मेल खाती है। इसमें अधिक तीखी व समृद्ध रंग योजना है। दक्कनी चित्रकला में भी ये विशेषताएँ हैं। ऊँचा उठा हुआ वृताकार क्षितिज और सुनहरे आकाश का चित्रण फ़ारसी प्रभाव प्रदर्शित करता है। हम देख सकते हैं कि सभी दक्कनी राज्यों के परिदृश्य का पूरा चित्रण ही फ़ारसी शैली से प्रभावित है।

तारिफ-ए-हुसैन शाही—सिंहासन पर बैठे राजा, अहमदनगर, 1565–69, भारत इतिहास समशोधक मंडल, पूना

दक्कन की रागमाला चित्रकला शृंखला के चित्रों में नारी चित्रण में वेशभूषा का चित्रण काफी रोचक है। इसमें सोहलवीं शताब्दी के दक्कनी चित्रकला का विकास दिखाई देता है। नारी चित्रण में बालों का जूड़ा लिपाक्षी भित्ति चित्रों की तरह गर्दन पर टिका हुआ है। क्षितिज लुप्त हो गया है, जिसे रंग विहीन उदासीन पृष्ठभूमि में छोटे-छोटे पौधों के चित्रण या विथिका के ऊपर दक्कनी शैली जैसे गुंबदाकार वस्तु के अंकन से विस्थापित किया गया है। बालों को बनाने की शैली के अलावा अन्य सभी विशिष्टताओं में उत्तर भारतीय या फ़ारसी शैली के चिह्न मिलते हैं। पुरुषों

की वेशभूषा भी निश्चित रूप में उत्तर भारतीय है। लंबी नुकीली चाक वाला जामा प्राक् अकबरी लघु चित्रकारी में काफी दिखाई देता है। ये चित्र संभवतः दिल्ली-अहमदाबाद के बीच के क्षेत्र में बने हैं। छोटी पगड़ी का चित्रण भी प्रारंभिक अकबरी लघु चित्रकारी के प्रभाव में है जो 1567 की 'गुलिस्ताँ' के चित्रों में दिखाई देता है। गुलिस्ताँ के इन चित्रों को बुखारा के चित्रकारों ने चित्रित किया है। तथ्यात्मक रूप से यह भी संभावना है कि इन चित्रकारों ने दक्कनी चित्रकला के लिए भी काम किया। इसका संदर्भ या प्रमाण बांकीपुर लाइब्रेरी, पटना में संग्रहित एक पांडुलिपि से मिलता है। यह चित्रकार युसुफ द्वारा हस्ताक्षरित (1569) है और इब्राहिम आदिलशाह को समर्पित है। ये संभवतः गोलकुंडा के इब्राहिम कुतुब शाह हैं, जिन्होंने 1550–80 के बीच यहाँ शासन किया। इस पांडुलिपि में सात लघु चित्रकारी हैं जो पूरी तरह उस समय की बुखारा शैली में चित्रित हैं।

बीजापुर चित्रकला शैली

सोलहवीं शताब्दी के बीजापुर के चित्रों में 1570 ई. का चित्रित विश्वकोश *नुजूम-अल-उलूम* महत्वपूर्ण है। इसके 876 लघु चित्रकारियों में कई चित्र पात्र (बरतन), अस्त्र-शस्त्र और नक्षत्र के हैं। इसमें नारियों का चित्रण रागमाला चित्रकला की तरह लंबी और पतली तथा दक्षिण भारतीय वेशभूषा में हुआ है। बीजापुर चित्रकला शैली को अली आदिलशाह प्रथम (1558–80) और उसके अधिकारी इब्राहिम द्वितीय (1580–1627) ने संरक्षण दिया। दोनों कला व साहित्य प्रेमी थे। इब्राहिम द्वितीय भारतीय संगीत के मर्मज्ञ थे और उन्होंने भारतीय संगीत पर *नौरस-नामा* पुस्तक लिखी। यह *नुजूम-अल-उलूम* के भी लेखक थे। उनके आधिपत्य में ही संभवतः1590 ई. में रागमाला शृंखला प्रमाणित हुई। बीजापुर का तुर्की से संबंध उस शृंखला के अंतरिक्ष संबंधी चित्रों के चित्रांकन में दिखता है। ये चित्र तुर्की पांडुलिपि से काफी प्रभावित हैं। रागमाला के आध्यात्मिक व भावपक्ष (अंतरात्मा) से संबंधित चित्र भारतीय प्रभाव में हैं, जिनमें लेपाक्षी शैली की झलक दिखाई देती है। ये आदिल शाह के दरबार के सुरुचिपूर्ण चित्रों में समृद्ध तीखे रंग, वेगपूर्ण रेखाएँ और सहज संयोजन सौंदर्यबोध का अनुकरण करते हैं। समृद्धि का सिंहासन सात खंडों का प्रतीकात्मक खाका है। प्रत्येक खाके में इनके निवासी हाथी और शेर से लेकर खजूर के

नुजूम अल-उलूम— समृद्धि का सिंहासन, बीजापुर, 1570 चेस्टर बीट्टी लाइब्रेरी, डबलिन, आयरलैंड

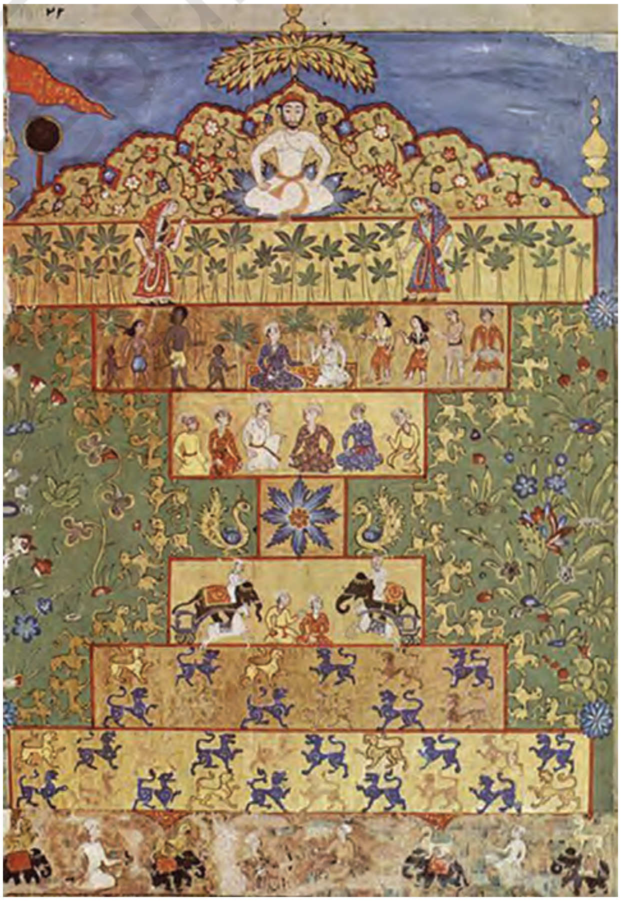

© NCERT not to be republished

वृक्ष, तोते व आदिवासी जनजातीय लोग अंकित किए गए हैं। छोटे-छोटे चित्रों की यह चित्र शृंखला गुजरात के घरों के मुख्य दरवाज़ों पर लगे काष्ट उत्कीर्ण पैनलों जैसे दिखते हैं या दक्कन के मंदिरों पर हाथियों की सीढ़ीनुमा चित्रों की याद दिलाते हैं। इस पृष्ठ की रंग योजना पूरी तरह इस्लामिक फ़ारसी शैली में है, विशेष रूप से सिंहासन के ऊपरी हिस्से में पेड़-पौधों का चित्रण गहरी नीली पृष्ठभूमि के विरुद्ध दक्कनी शैली में चित्रित फूल-पत्तियों से घिरा है। सिंहासन के दोनों ओर पेड़-पौधों का ये रूढ़िबद्ध चित्रण सोलहवीं शताब्दी के गुजराती पांडुलिपि चित्रों के हाशिये के चित्रण से मिलता-जुलता है। इस प्रकार इस चित्र में सशक्त भारतीय दृश्य चित्रण परंपरा मौजूद है जो इस लघु चित्रकला को संरचित करती है।

योगिनी, बीजापुर, सत्रहवीं शताब्दी, चेस्टर बीट्टी लाइब्रेरी, डबलिन, आयरलैंड

चित्रकला की एक अन्य विषयवस्तु योगिनी है। योगिनी अर्थात् योग में विश्वास करने वाली, शारीरिक व मानसिक रूप से अनुशासित जीवन जीने वाली, आध्यात्मिकता व बौद्धिकता की खोज में अंततः सब कुछ का त्याग कर असाधारण जीवन जीने वाली।

इसे एक अज्ञात चित्रकार ने बनाया है। इसमें उसकी व्यक्तिगत शैली का विकास दिखता है। योगिनी की आकृति के अनुरूप चित्रकार ने लंबवत संयोजन चुना है। चित्र की पृष्ठभूमि में योगिनी की लंबी आकृति के ऊपर दायें कोने में सफ़ेद वस्तु का शंकुवाकार अंकन है। योगिनी मायना चिड़ियों के साथ क्रीड़ारत है। योगिनी के सिर पर बालों का ऊँचा जूड़ा है जो उसे और अधिक लंबा दिखा रहा है। शरीर के इर्द-गिर्द वृत्ताकार लहराता लंबा दुपट्टा व अग्रभूमि में चित्रित अति सुंदर फूल, पौधे चित्र को अद्भुत बनाते हैं।

गोलकुंडा चित्रकला शैली

गोलकुंडा 1512 से एक स्वतंत्र राज्य था और सोलहवीं शताब्दी के अंत तक वह दक्कन राजवंश का सबसे समृद्ध राज्य था। अन्य देशों के साथ सामुद्रिक व्यापार के कारण इसे यह समृद्धि प्राप्त थी। एक तरफ़ पूर्वी तट से दक्षिणी पश्चिमी एशिया

लोहा व सूती वस्त्र भेजे जाते थे। फ़ारस (पर्शिया) के साथ विशेष रूप से छपाई किए हुए सूती कपड़े का व्यापार होता था, जो बाद में पश्चिमी यूरोप में काफी लोकप्रिय हुए। सत्रहवीं शताब्दी की शुरुआत में यहाँ हीरा पाया गया जिससे व्यापार की स्थिति और अधिक मज़बूत हुई और यह आय का अच्छा स्रोत बन गया। गोलकुंडा के पुरुष स्त्रियों विशेषकर नर्तक-नर्तकियों और अन्य दरबारियों द्वारा पहने जाने वाले आभूषणों में यह समृद्धि दिखाई देती है। इसके अतिरिक्त, गोलकुंडा चित्रकला ने असाधारण प्रसिद्धि प्राप्त की।

मुहम्मद कुली कुतुब शाह के सामने नृत्य प्रस्तुतीकरण, गोलकुंडा, 1590 ब्रिटिश संग्रहालय, लंदन, यू.के. (यूनाइटेड किंगडम)

सत्रहवीं शताब्दी में जब डच व्यापारियों द्वारा सुल्तानों की छवियों को यूरोप लेकर जाया गया तब गोलकुंडा कला प्रसिद्ध हुई। ये संभवत: बाज़ार के लिए किया गया था और राजदरबारी चित्रकला के लिए संदर्भित थे। 1635–50 के बीच में, गोलकुंडा चित्रकला से पूर्व ये पट आठ फ़िट ऊँचे और दीवार पर लटकन के तौर पर इस्तेमाल किए गए। ये चित्रण सांकेतिक डिज़ाइन से आच्छादित हैं, जिसमें आमतौर पर वास्तु संरचनाएँ विभिन्न आकृतियों के चित्र चित्रित होते थे।

अभी तक गोलकुंडा की कला के तहत पहचानी गई शुरू की पाँचों लघु चित्रकारियाँ 1463 के *हाफिज के दीवान* में पाई गई हैं। ये चित्र दरबार के दृश्यों का प्रतिनिधित्व करते हैं, इनमें से एक चित्रण में चित्र के बीचों बीच युवा शासक सिंहासन पर बैठा है। वह हाथ में लंबी सीधी ठेठ दक्कनी तलवार पकड़े हुए है। उसने मलमल का कोट पहना हुआ है, जिसमें लंबवत कढ़ाई की हुई पट्टी लगी हुई है। यह गोलकुंडा दरबार की वेशभूषा है। पाँचों चित्रकलाओं में आकाश, वास्तु व बहुत-सी आकृतियों की वेशभूषा के चित्रण में सुनहरे रंग का प्रचुर मात्रा में प्रयोग हुआ है। दरबार में नर्तकियों की कलाबाजियों का आनंद लिया जा रहा है। संयोजन में एक जैसे अनुपयोगी वास्तु की एक के ऊपर कई पट्टियों का चित्रण काफी रोचक है। फ़र्श पर आकृतियों से सुसज्जित कालीन बिछा है। चित्र मुगल प्रभाव से बिलकुल अछूते हैं। बैंगनी रंग का उन्मुक्त प्रयोग हुआ है। कुछ भित्ति चित्रों के चित्रण में एक चित्र में नीली लोमड़ियों व सियारों का रोचक चित्रण किया गया है।

एक बगीचे में कवि, मुहम्मद अली, गोलकुंडा, 1605–15, ललित कला संग्रहालय, बोस्टन, संयुक्त राज्य अमरीका

मोहम्मद कुतुब शाह (1611–20) का एक चित्र है, जिसमें वह अपने शासन के शुरुआती काल में दीवान पर बैठे हैं। छोटी चुस्त सुरुचिपूर्ण टोपी के साथ उन्होंने ठेठ गोलकुंडा पोशाक पहनी है। उनकी 1590 वाले चित्रों से काफी साम्यता के बावजूद संयोजन में अधिक तकनीकी दक्षता और परिष्करण दिख रहा है। दरबारियों व दूल्हे के वेशभूषा के चित्रण में प्लास्टिक की परत दिखाई देती है।

सूफी कविता की पांडुलिपि में पद का सचित्र चित्रण है जिसमें पदों की व्याख्या के साथ लगभग 20 लघु चित्रकारियाँ हैं। इसमें सुनहरे रंग का प्रचुर इस्तेमाल किया गया है। नीले और सुनहरे रंग की अलग-अलग पट्टियों से आकाश का विचित्र चित्रण देखा जाता है। जिसमें सुनहरा रंग नीले रंग के नीचे है। दोनों पट्टियों में बादलों का चित्रण है। पुरुष और स्त्रियों की वेशभूषा बीजापुर के इब्राहिम द्वितीय के काल के प्रचलन जैसी है। पेड़-पौधे दक्कनी शैली जैसे हैं। कुछ पौधों को घनी पत्तियों के बीच चित्रित किया गया है। एक अन्य चित्र में छोटी चिड़िया से बातचीत करती स्त्री का चित्रण है जो दक्कनी चित्रकला शैली की एक और अन्य विशेषता है।

अभ्यास

1. दक्कनी शैली के योगिनी चित्रकला की क्या विशेषताएँ हैं? क्या आप वर्तमान में इस शैली जैसा काम करने वाले चित्रकार को ढूँढ़ सकते हैं?
2. दक्कनी चित्रकला शैली की लोकप्रिय विषयवस्तु क्या है?
3. दक्कनी शैली की अपनी पसंद की किन्हीं दो चित्रकलाओं पर लगभग 100 शब्दों में लिखिए।
4. दक्कनी चित्रकला शैली मुगल चित्रकला शैली से किस प्रकार भिन्न है? बताइए।
5. दरबारी दक्कनी चित्रकला का शाही प्रतीक क्या है?
6. दक्कनी चित्रकला शैली के केंद्रों के बारे में बताइए और उन्हें मानचित्र पर दर्शाइए।

© NCERT not to be republished

संयोजित घोड़ा

सत्रहवीं शताब्दी की इस चित्रकला में कई आकृतियों व कलात्मक तत्वों का रोचक मिश्रण हुआ है, जिसकी पराकाष्ठा संयोजित घोड़ा के रूप में हुई है। इस चित्रकला के अंदर मानव व पशु-पक्षी की आकृतियों को एक साथ इस तरह से चित्रित किया गया है कि यह असाधारण संयोजन बन गया है। अलंकृत पृष्ठभूमि पर सरपट दौड़ते हुए घोड़े का यह अद्‌भुत चित्रण है। उड़ते हुए पक्षी, सिंह, चीनी बादल, पौधे व विशाल वृक्षों का रुचिकर संयोजन है, जिनमें अति यथार्थवादी कला तत्वों की झलक मिलती है। एक तरफ सभी आकृतियों को हवा में उड़ते हुए गतिशील दिखाया गया है, दूसरी ओर अग्रभूमि में नीचे के दोनों किनारों पर चट्टानों का चित्रण इसे विलक्षण बनाता है। कल्पनाशीलता का पुट भी इसे विशिष्टता प्रदान करता है। सभी गतिशील क्रियाओं को बहुत सीमित रंग योजना में भूरे और नीले रंग से चित्रित किया गया है।

सुल्तान इब्राहिम आदिल शाह द्वितीय हॉकिंग

यह चित्रकला असाधारण ऊर्जा और संवेदना से परिपूर्ण है। घोड़े के पैरों और पूँछ के कोने पर तीखा लाल रंग, सुल्तान इब्राहिम आदिल शाह द्वितीय के लहराते हुए वस्त्र का चित्रण, एक दृश्यात्मक अनुभव प्रदान करता है। पृष्ठभूमि में पत्तियों से भरे घने जंगल में काई रंग, पन्ना हरा रंग, नीला रंग, हरे रंग की पत्तियों, संभोगरत पक्षी का जोड़ा, नीले आकाश व सुनहरे सूर्य की किरणों से चमकता संयोजन अति आकर्षक है। सबसे अद्भुत बीच में चमकता सफ़ेद बाज़ और सुल्तान का तराशा हुआ चेहरा है। घोड़े और चट्टानों के चित्रण में फ़ारसी प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। अग्रभूमि में पेड़-पौधों और घना परिदृश्य देशी प्रभाव प्रदर्शित करता है। दौड़ते घोड़े की गति संपूर्ण चित्र को ऊर्जावान और परिदृश्य को मनोहरी, सुरम्य बनाती है। यह चित्रकला इंस्टीट्यूट ऑफ़ द पीपल्स ऑफ़ एशिया, लेनिनग्राद, रूस में संग्रहित है।

राग हिंडोल की रागिनी पथमासिका

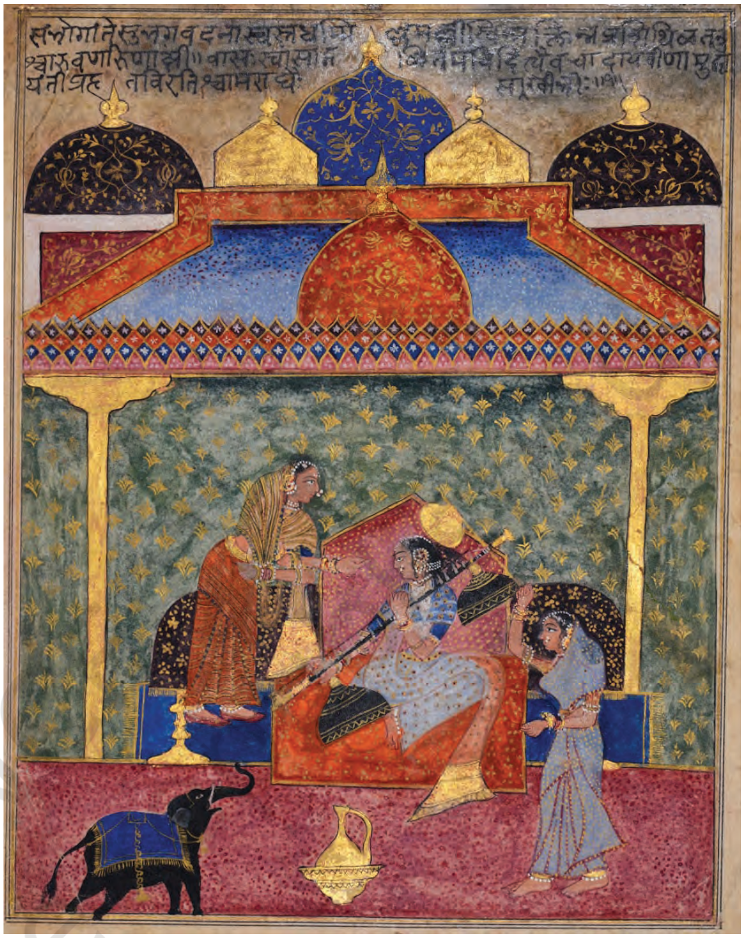

राष्ट्रीय संग्रहालय, नयी दिल्ली में राग हिंडोला की रागिनी पथमासिका शीर्षक की एक दिलचस्प चित्रकला संग्रहित है। यह भारतीय संगीत विधा के रागमाला परिवार का एक महत्वपूर्ण भाग है जो कि लगभग 1590–95 के समय के पूर्व का है। कुछ अध्येताओं का विश्वास है कि यह दक्कन के एक महत्वपूर्ण राज्य, बीजापुर से संबंधित है। लगभग मुगल चित्रकला शैली के विकास के साथ-साथ ही दक्कनी राज्यों में चित्रकला का एक अत्यधिक कला रूप विकसित हुआ। चित्रकला में फ़ारसी प्रभाव स्पष्ट है। यह प्रभाव दो गुंबदों पर बेलबूटे के काम से सुसज्जित पृष्ठभूमि पर दिखाई देता है, जो कि चित्रकला के ऊपरी भाग को चित्रित करता है। इस चित्रकला में दोनों गुंबदों के ऊपर की गई सुसज्जा में फ़ारसी चित्रकला का प्रभाव दिखाई देता है। गुंबदों का ऊपरी भाग चित्र को विभाजित करता है जहाँ खाली स्थान पर देवनागरी लिपि में लिखा गया है। मंडप में दो महिलाएँ खूबसूरती से सजे और आभूषण पहने हुए दिखाई दे रही हैं, जबकि तीसरी इसके बाहर दिखाई दे रही है। केंद्र में बैठी महिला वादक एक भारतीय वाद्य यंत्र बजा रही है जो कि वीणा प्रतीत होता है, जबकि पास में अन्य दो महिलाएँ अपने शरीर से लयबद्ध होती प्रतीत होती हैं। इस चित्रकला में चमकीले रंग हैं। लाल रंग प्रमुख है और हरे रंग द्वारा सराहा जाता है। आकृतियों को इस अर्थ में शैलीबद्ध कहा जा सकता है कि चेहरे सहित उनके शरीर का निर्माण लगभग सूत्रात्मक विवरणों पर किया गया है। गूढ़ रेखा के साथ लगभग सभी रूपों पर ज़ोर दिया गया है। इसे सदियों पहले चित्रित अजंता के भित्ति चित्रों में भी देखा जा सकता है। यहाँ यह भी ध्यान देने योग्य है कि बायें हाथ के कोने में एक हाथी सूँड उठाए हुए है, जो स्वागत का एक मनोहर संकेत है। नाप में छोटा होने के बावजूद, हाथी दृश्य रुचि जाग्रत करता है और स्थापत्य विद्या की संरचना को तोड़ता है।

सुल्तान अब्दुल्ला कुतुब शाह

बीजापुर के सुल्तान अब्दुल्ला का छवि चित्रण राष्ट्रीय संग्रहालय, नयी दिल्ली में संग्रहित है। चित्र के ऊपरी भाग में फ़ारसी अभिलेख है। सुल्तान कुतुब शाह दक्कन के प्रसिद्ध राज्य बीजापुर का समर्थ शासक था। इसने दुनिया के विभिन्न हिस्सों के शासकों व कलाकारों को आकर्षित किया। इसमें वह सिंहासन पर बैठा है और उसने अपने हाथ में तलवार थामी हुई है जो उसके राजनीतिक आधिपत्य का प्रतीक है। इसके अलावा उसके सिर के चारों ओर देवत्व का प्रभामंडल दिखाई देता है।

हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया और अमीर खुसरो

राष्ट्रीय संग्रहालय, नयी दिल्ली में संग्रहित यह प्रांतीय (प्रोवेंशियल) चित्र हैदराबाद, दक्कन का है। यह तेरहवीं शताब्दी के पूर्वतीय सूफी संत हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया को दर्शाता है। इस चित्र में वह अपने शिष्य तथा प्रसिद्ध कवि और विद्वान हज़रत अमीर खुसरो का संगीत सुन रहे हैं। इन दिनों नयी दिल्ली हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया की दरगाह पर खुसरो द्वारा अपने पीर की प्रशंसा में कव्वाली आयोजित की जाती है। इस नियमित सांस्कृतिक कार्यक्रम का आनंद लेने के लिए दुनिया भर से श्रद्धालु यहाँ आते हैं। हैदराबाद के दरबार से लिया गया यह चित्र बगैर किसी तकनीकी व कलात्मक परिष्करण के अति सरल चित्र है। इसके बावजूद इसमें भारतीय लोकप्रिय विषय का विवरणात्मक और आर्कषक चित्रण है।

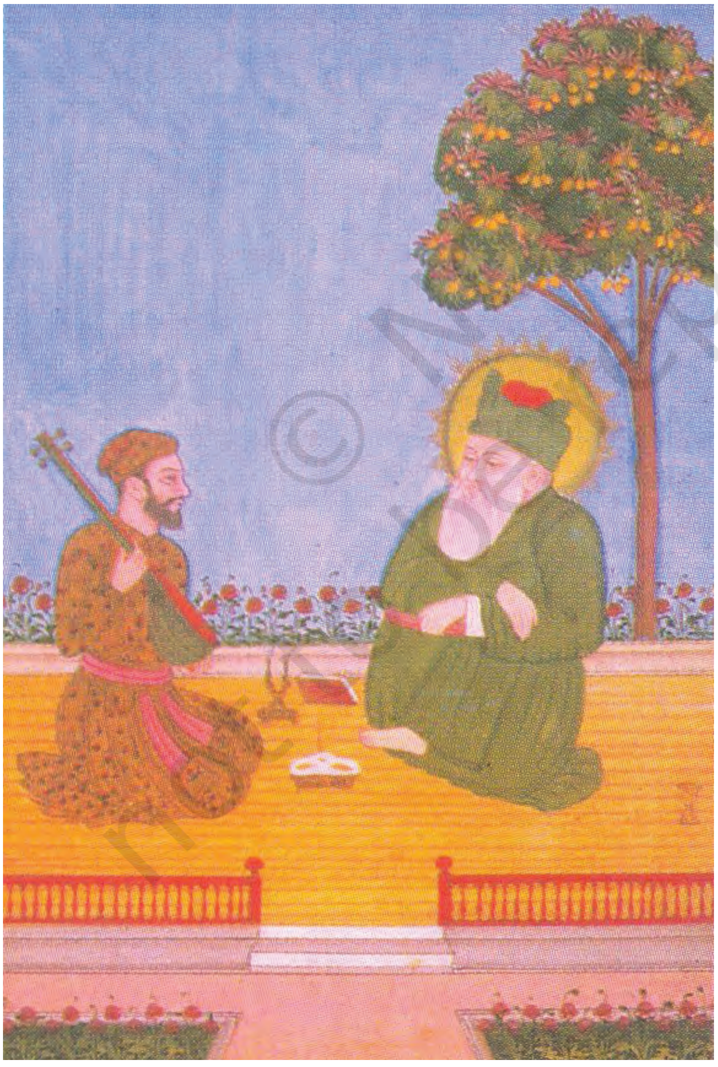

not to be republished © NCERT

पोलो खेलते हुए चाँद बीबी

यह चित्रकला सर्वाधिक समृद्ध और सांस्कृतिक रूप से परिष्कृत, दक्कन राज्य के बीजापुर की रानी, चाँद बीबी का है। चाँद बीबी ने सम्राट अकबर द्वारा राज्य पर अधिकार करने के राजनीतिक प्रयासों का विरोध किया था। सम्माननीय और निपुण शासक चाँद बीबी बड़ी खिलाड़ी भी थीं। इस चित्रण में वह चौगान खेलते हुए दिखाई गई हैं। यह उस समय का लोकप्रिय शाही खेल है। यह चित्र बहुत बाद की अवधि की प्रांतीय शैली का है और यह राष्ट्रीय संग्रहालय, नयी दिल्ली में संग्रहित है।

© NCERT not to be republished

पहाड़ी चित्रकला शैली

5

पर्वतीय क्षेत्र में विकसित चित्रकला को पहाड़ी चित्रकला शैली के नाम से जाना जाता है। सत्रहवीं से उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य बसोहली, गुलेर, काँगड़ा, कुल्लू, चंबा, मनकोट, नूरपुर, मंडी, बिलासपुर, जम्मू और पश्चिमी हिमालय के अन्य पहाड़ी शहर चित्रकला केंद्र के रूप में उभरे। ये सभी क्षेत्र पहाड़ी चित्रकला शैली के अंतर्गत आते हैं। बसोहली से आरंभ हुई अपरिष्कृत अत्यलंकृत शैली गुलेर और आरंभिक-काँगड़ा दौर से होते हुए भारतीय कला में अत्यंत उत्कृष्ट और परिष्कृत काँगड़ा शैली के रूप में उभरकर आई।

मुगल, दक्कनी और राजस्थानी चित्रकला की स्पष्ट शैलीगत विशिष्ट पहचान से भिन्न पहाड़ी चित्रकला अपनी क्षेत्रीय विभाजन की चुनौतियों को प्रदर्शित करती है।

हालाँकि ऊपर उल्लिखित सभी केंद्रों में सटीक विशेषताओं के साथ प्रकृति, स्थापत्य, विशिष्ट आलंकारिक चेहरे, पहनावे, किसी रंग विशेष की प्राथमिकता और ऐसी अनेक विशेषताएँ प्रदर्शित की गई हैं। उन्होंने आवश्यक अंतर को स्थापित नहीं किया और न ही ये सभी अपनी विशिष्ट पहचान के साथ एक शैली के रूप में विकसित हुईं। इसीलिए दिनांकित सामग्री के अभाव के कारण एक सूचित वर्गीकरण नहीं हो सकता।

पहाड़ी चित्रकला शैली का उद्‌भव अभी तक बहुत स्पष्ट नहीं है जबकि शोधकर्ता लगातार इसके उद्‌भव और प्रभाव की विवेचना करते रहे हैं। यह व्यापक रूप से स्वीकारा गया है कि मुगल एवं राजस्थानी चित्रकला शैली, पहाड़ी क्षेत्रों में प्रांतीय मुगल शैली और राजस्थानी राजसी दरबार के पहाड़ी राजाओं के साथ पारिवारिक संबंधों के उदाहरणस्वरूप जानी जाती है। जबकि चमकीली, चटक स्पष्ट बसोहली शैली साधारणतः शुरुआती प्रचलित चित्रात्मक भाषा के रूप में पहचानी जाती है। पहाड़ी शैली के प्रसिद्ध अध्येताओं में से एक बी.एन. गोस्वामी ने सरल सादगीपूर्ण बसोहली शैली को, गीतात्मक काव्य और परिष्कृत काँगड़ा शैली का

कृष्ण मक्खन चुराते हुए, भागवत पुराण, 1750, एन. सी. मेहता संग्रह, अहमदाबाद, गुजरात, भारत

© NCERT not to be republished

रूप देने के लिए उस प्रतिभाशाली कलाकार परिवार को श्रेय दिया है, जिन्होंने अपनी विद्वता के दृष्टिकोण से इसे आकार दिया। गोस्वामी का मत था कि पंडित सिऊ (शिव) का परिवार ही मुख्यतः पहाड़ी चित्रकला की शृंखला बनाने के लिए उत्तरदायी था। उनका यह भी तर्क है कि क्षेत्रों के आधार पर पहाड़ी चित्रकला की पहचान करना भ्रामक हो सकता है, क्योंकि राजनीतिक सीमाएँ हमेशा बहुत अनिश्चित होती थीं। यही तर्क राजस्थानी शैली के लिए भी सत्य है कि सिर्फ़ क्षेत्रीयता को श्रेय देना अस्पष्टता दिखाता है और कुछ असमानताएँ अनुत्तरित रह जाती हैं। इसलिए यदि कलाकारों के परिवार को शैली के वाहक के रूप में माना जाता है तो शैली के अनेक प्रकारों को स्वीकार कर उन्हें एक क्षेत्रीय शैली में समाहित किया जा सकता है।

शोधकर्ता यह मानते हैं कि अठारहवीं शताब्दी के आरंभ में पंडित सिऊ परिवार एवं अन्य कलाकारों की रचना शैली बसोहली शैली के पर्याय बन गए थे। जबकि अठारहवीं शताब्दी के मध्य से उन्होंने इस शैली को काँगड़ा के आरंभिक दौर से इसके चरम तक रूपांतरित कर दिया था। इस अचानक परिवर्तन और प्रयोगात्मक आरंभ ने पहाड़ी केंद्रों से संबद्ध अनेक शैलीगत विकास का सृजन किया और ये ही विभिन्न कलाकार परिवारों द्वारा मुगल शैली के उदाहरणों से पहाड़ी राज्यों को परिचित करने के लिए उत्तरदायी हैं। अचानक इन चित्रों के उद्गम से चाहे वे शासकों, कलाकारों व्यापारियों या ऐसी कोई संस्था या घटना के कारण विकसित हुआ, कलाकार प्रभावित हुए और उनकी चित्रकला की भाषा पर गहरा प्रभाव पड़ा।

वन में राम और सीता, काँगड़ा, 1780, डगलस बैरैट कलेक्शन

अधिकांश विद्वान इस परिकल्पना पर विवाद करते हैं कि इस अचानक परिवर्तन की शुरुआत मुगल चित्रशाला के प्रवासी कलाकारों से हुई।

गोस्वामी के अनुसार पहाड़ी कलाकारों की चित्रों में नैसर्गिक शैली की मनोहारिता के प्रति संवेदनशीलता जाग्रत हुई।

सादृश्य के आधार पर की गई संरचनाओं में कुछ चित्रों में सुसज्जित हाशिये दिखाई देते हैं। इन चित्रों की विषयवस्तुओं में दैनंदिन अथवा राजाओं के जीवन से संबंधित महत्वपूर्ण समारोह, महिलाकृतियों में नवीनता एवं आदर्श चेहरे का चित्रण आदि सभी कांगड़ा शैली के उद्भव के साथ कालांश में परिपक्व हो गए।

बसोहली शैली

पहाड़ी राज्य का पहला एवं प्रभावकारी कला का उदाहरण बसोहली से मिलता है। सन् 1678 से 1695 तक प्रबुद्ध राजा कृपाल पाल ने इस राज्य पर शासन किया। उनके शासन काल में बसोहली एक विशेष एवं प्रभावशाली शैली के रूप में विकसित हुई। प्रभावी प्राथमिक रंग, उष्ण पीली रंगत लिए पृष्ठभूमि, उच्च क्षितिज रेखा, प्रकृति का शैलीगत दृश्यांकन और उभरे हुए श्वेत रंग का अनुकरण, जो गहनों में मोतियों को प्रदर्शित करता है, ये सब इस शैली की चारित्रिक विशेषताओं को प्रस्तुत करते हैं। बसोहली शैली की सबसे महत्वपूर्ण चारित्रिक विशेषता है— ज़ेवरात को चित्रित करने के लिए छोटे चमकीले हरे कीट-पंखों के अंश का प्रयोग और पन्ना के प्रभाव का अनुकरण। इनके चमकीले रंग और लालित्य ने पश्चिम भारतीय चौरपंचाशिका समूह की चित्रकला के सौंदर्य को साझा किया है।

भानुदत्त की *रासमंजरी* बसोहली कलाकारों का सबसे प्रचलित विषय था। सन् 1694–95 में तरखान (सुतार चित्रकार) देवीदास ने अपने संरक्षक राजा कृपाल पाल के लिए चित्रों की आलीशान शृंखला बनाई। *भागवत पुराण* और *रागमाला* चित्रकला के अन्य प्रसिद्ध विषय रहे। कलाकारों ने स्थानीय राजाओं के छवि चित्रणों के साथ-साथ उनकी पत्नियों, दरबारियों, ज्योतिषियों, वैद्यों, गणिकाओं एवं अन्य

रासमंजरी, बसोहली, 1720, ब्रिटिश संग्रहालय, लंदन, यू.के. (यूनाइटेड किंगडम)

© NCERT not to be republished

राम अपनी संपत्ति दान देते हुए, अयोध्या कांड, शांगरी रामायण, 1690–1700, लॉस एंजिल्स काउंटी कला संग्रहालय, संयुक्त राज्य अमरीका

लोगों के छवि चित्र बनाए। बसोहली चित्रशाला के कलाकार धीरे-धीरे अन्य पहाड़ी राज्यों, जैसे— चंबा और कुल्लू में चले गए और बसोहली (कलम) शैली को स्थानीय रूपांतर के साथ सृजित किया। सन् 1690 से 1730 की अवधि में चित्रों की एक नवीन शैली 'गुलेर-काँगड़ा' के रूप में प्रचलित हुई। इस समयकाल में कलाकारों ने प्रयोगशीलता और तात्कालिक प्रदर्शन में आसक्त होकर, अंततः काँगड़ा शैली का विकास किया।

अतः बसोहली से प्रारंभ होकर यह शैली धीरे-धीरे अन्य पहाड़ी राज्यों— मनकोट, नूरपुर, कुल्लू, मंडी, बिलासपुर, चंबा, गुलेर और काँगड़ा में प्रसारित हुई।

संस्कृत महाकाव्य *रामायण* बसोहली के साथ-साथ कुल्लू के कलाकारों का भी पसंदीदा विषय था। यह शृंखला 'शांगरी' नाम से जानी जाती है जो कुल्लू के राजकीय परिवार के निवास की एक शाखा थी जो इस शृंखला के संरक्षक एवं प्रारंभ में इसके स्वामी थे। कुल्लू के कलाकारों के ये चित्र बसोहली एवं बिलासपुर शैली के अलग-अलग अंदाज़ से प्रभावित हुए।

शांगरी रामायण के अयोध्या कांड पर आधारित एक चित्र में राम अपनी भार्या सीता और भ्राता लक्ष्मण के साथ वनवास जाने के लिए अयोध्या छोड़ने की तैयारी करते हैं। राम धैर्य के साथ अपने अधिकार की सभी वस्तुएँ देने में लिप्त हैं। राम के अनुरोध पर भ्राता लक्ष्मण अपनी वस्तुओं को उतार रहे हैं और लोगों की भीड़ अपने दानशील प्रिय राम के अमूल्य ज़ेवरों, हज़ारों गायों और अन्य ज़ेवरात को ग्रहण करने के लिए एकत्रित हो रही है।

चित्र के बायें तरफ दो राजकुमार, सीता के साथ कालीन पर खड़े चित्रित किए गए हैं, जहाँ दान लेने के लिए भीड़ उनकी ओर-बढ़ रही है। कलाकार ने बहुत

ऋषि विश्वामित्र का अनुसरण करते हुए राम और लक्ष्मण जंगल की ओर जाते हुए, बाल कांड, शांगरी रामायण, 1680–88 राजा रघबीर सिंह संग्रह, शांगरी, कुल्लू घाटी, भारत

सावधानीपूर्वक अलग-अलग व्यक्तियों—बैरागियों, ब्राह्मणों, दरबारियों, सामान्य व्यक्तियों एवं राजकीय पारिवारिक सेवकों को चित्र में प्रस्तुत किया है। गलीचे पर सोने के सिक्कों के ढेर और वस्त्राभूषण विपुल मात्रा में प्रदर्शित किए गए हैं। गायें एवं बछड़ें अवसर को समझ नहीं पा रहे हैं, उनकी निगाहें स्थिर और गर्दन ऊँची है तथा मुँह खुले हुए हैं। परिस्थिति की गंभीरता विभिन्न भाव-भंगिमाओं से प्रदर्शित होती है— राम की शांत परंतु मृद मुस्कुराहट, आतुर भाव लिए लक्ष्मण, आशंकित सीता और ब्राह्मण जो भिक्षा पाने की इच्छा रखते हैं, किंतु प्रसन्न नहीं हैं और अन्य लोग अविश्वसनीयता और कृतज्ञता के भाव लिए दिखाए गए हैं। उत्कृष्ट प्रभाव प्रदर्शित करने की आनंदानुभूति के साथ कलाकार ने राम द्वारा पकड़े पारदर्शी वस्त्र, ब्राह्मणों की दाढ़ी एवं तिलक, गहने तथा शस्त्रों का रमणीय अंकन किया है।

इसी शृंखला का एक अन्य चित्र जिसमें राम एवं लक्ष्मण गुरू विश्वामित्र के साथ राक्षसों, जो तपस्वियों की तपस्या एवं धार्मिक अनुष्ठानों में हस्तक्षेप कर बाधाएँ उत्पन्न करते हैं, के नाश के लिए वन की तरफ जा रहे हैं। इस चित्र का एक रोचक तथ्य है कि कलाकार ने भारी शरीर वाले जानवरों को पेड़ों के पीछे छिपकर शिकार खोजते हुए अंकित किया है, पेड़ों के पीछे से उनका आधा शरीर दिखाई दे रहा है। बायीं ओर एक लोमड़ी और दायीं ओर एक शेर का चित्र कलाकार ने बड़ी दक्षता से अंकित किया है जो केवल घने जंगल में छिपे पशुओं को ही प्रदर्शित नहीं करता, बल्कि दो राजकुमारों (राम एवं लक्ष्मण) के अद्‌भुत साहस के भावनात्मक मूल्यों को भी दर्शाता है। दृश्य में विविध पशुओं का अंकन, कपट वेश में राक्षसों के संभावित रहस्य को शामिल करता है।

© NCERT not to be republished

गुलेर शैली

अठाहरवीं शताब्दी के आरंभिक दौर में बसोहली शैली में पूर्णतः बदलाव आया। इससे गुलेर-काँगड़ा का दौर प्रारंभ हुआ। काँगड़ा के उच्च शाही परिवार के राजा गोवर्धन चंद (1744–73) के संरक्षण में यह दौर सबसे पहले गुलेर में दिखाई दिया। गुलेर शैली के कलाकार पंडित सिऊ एवं उनके पुत्र मानक और नैनसुख को (1730–40 के दशक में) इस शैली को एक नवीन रूप देने का श्रेय जाता है जो प्रायः 'पूर्व काँगड़ा' या 'गुलेर-काँगड़ा कलम' के नाम से जानी जाती है। बसोहली की सुस्पष्ट जीवंतता की तुलना में यह अधिक परिष्कृत, सहज और सुंदर शैली है। नैनसुख, जो जसरोटा के राजा बलवंत सिंह के दरबारी चित्रकार थे, को सुस्पष्ट रूप से इस शैली को आकार देने का श्रेय जाता है जबकि मानक, जिन्हें मनकु के नाम से भी जाना जाता है, उन्होंने इस शैली का आरंभ किया था। 1780 में इस शैली का सबसे परिपक्व रूप काँगड़ा में पहुँचा। इस प्रकार काँगड़ा शैली बसोहली की प्रशाखा के रूप में चंबा और कुल्लू में फैल गई।

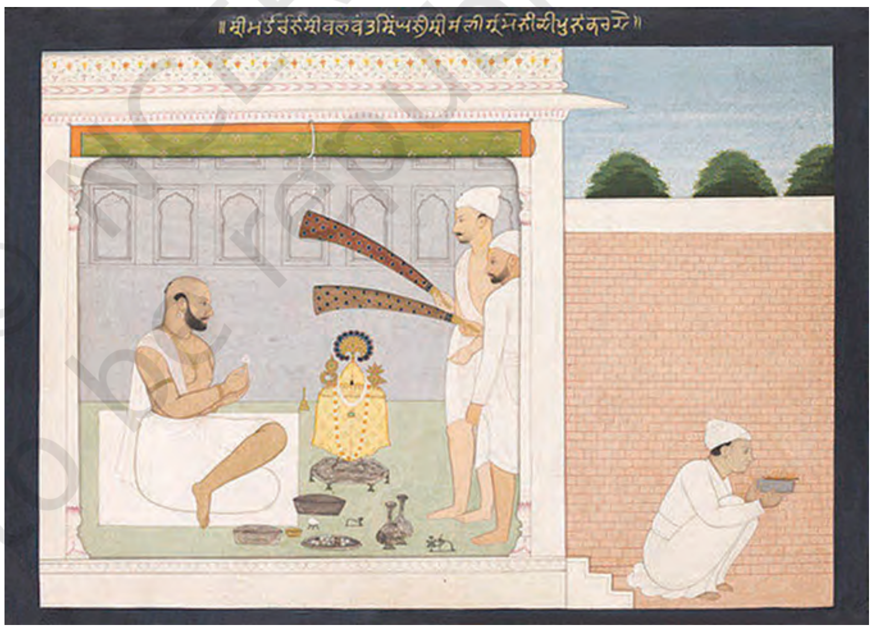

प्रार्थना में बलवंत सिंह, नैनसुख, 1750, विक्टोरिया और अल्बर्ट संग्रहालय, लंदन, यू.के. (यूनाइटेड किंगडम)

मानक एवं नैनसुख के पुत्रों एवं प्रपोत्रों ने अनेक केंद्रों में चित्रण कार्य किया और उन्हें इन पहाड़ी चित्रों को परिष्कृत रूप देने का श्रेय जाता है।

सभी पहाड़ी चित्रशैलियों में गुलेर की परंपरा सबसे अधिक लंबे समय तक प्रभावी रही। इसके साक्षात प्रमाण हरिपुर-गुलेर में कलाकार हैं, जो राजा दलीप सिंह (1695–1743) के राज्यकाल में कार्य कर रहे थे। दलीप सिंह और उनके पुत्र बिशन सिंह के छवि चित्र अस्तित्व में हैं जो 1730 के पूर्व के हैं अर्थात् गुलेर-काँगड़ा

© NCERT not to be republished

दौर आरंभ होने के पूर्व के हैं। बिशन सिंह अपने पिता दलीप सिंह के कार्यकाल में ही मृत्यु को प्राप्त हो गए थे, इसलिए उनके छोटे भाई गोवर्धन चंद सिंहासन पर बैठे जो इस चित्रकला शैली के बदलाव के साक्षी बने।

सन् 1730 में चित्रित *गीत गोविंद* शृंखला मानक की सबसे सुंदर, अद्भुत रचना है जिसमें बसोहली शैली के तत्व भी समाहित हैं, इनमें प्रचुर मात्रा में भौरों के पंखों की झालर का उपयोग किया गया है जो सबसे आकर्षक है।

ऐसा प्रतीत होता है कि नैनसुख ने अपने गृहनगर गुलेर को छोड़ दिया था और जसरोटा चले गए थे। ऐसा माना जाता है कि उन्होंने आरंभ में मियाँ जोरावर सिंह के लिए काम किया था जिनके पुत्र व उत्तराधिकारी बलवंत सिंह थे, जो उनके मुख्य संरक्षक बने। नैनसुख द्वारा बलवंत सिंह के जीवन पर बनाए मशहूर चित्रों का एक ऐसा दृश्यात्मक अभिलेख है जो उनके जीवन को प्रतिबिंबित करता है। बलवंत सिंह को अलग-अलग गतिविधियों में व्यस्त दिखाया गया है, जैसे— अपने स्नानगृह में, पूजन करते हुए, इमारत का निरीक्षण करते हुए, शीत ऋतु में कंबल लपेटकर तंबू में बैठे हुए आदि। कलाकार ने अपने संरक्षक को कृतार्थ करने के जुनून में हर संभव अवसर को चित्रित किया है। नैनसुख छवि चित्र बनाने में बहुत प्रतिभाशाली थे, जो बाद में पहाड़ी शैली की मुख्य विशेषता बनी। उनकी रंगपटिका कोमल हलके रंगों की थी जिसमें श्वेत एवं धूसर रंगों का साहसिक विस्तार शामिल था।

गोपियों को गले लगाते कृष्ण, गीत गोविंद, गुलेर, 1760–65, एन. सी. मेहता संग्रह, अहमदाबाद, गुजरात, भारत

मनकू ने भी अपने उत्साही संरक्षक, राजा गोवर्धन चंद और उनके परिवार के अनेक छवि चित्र बनाए। प्रकाश चंद, जो गोवर्धन चंद का उत्तराधिकारी था, उसने अपने पिता की कला के प्रति जुनून को आत्मसात किया और मनकू और नैनसुख के पुत्र कौशल, फत्तू और गोधू उनके दरबारी कलाकार थे।

काँगड़ा शैली

काँगड़ा क्षेत्र में चित्रकला, एक विशिष्ट शासक राजा संसार चंद (1775–1823) के संरक्षण में पल्लवित हुई। ऐसा माना जाता है कि जब गुलेर के राजा प्रकाश चंद आर्थिक तंगी के कारण अपनी चित्रशाला को सहेज नहीं पा रहे थे, तब उनके मुख्य कलाकार मनकू एवं उसके पुत्रों ने काँगड़ा के राजा संसार चंद का आश्रय लिया।

संसार चंद, दस वर्ष की आयु में सिंहासन पर बैठे, इस साम्राज्य की महिमा उनके दादा घमंड चंद द्वारा पुनः स्थापित की गई थी। वे कटोच साम्राज्य के शासकों से संबंध रखते थे, जो इस क्षेत्र में लंबे समय तक राज्य करते रहे। सत्रहवीं शताब्दी में जहाँगीर ने काँगड़ा को अपने अधिकार क्षेत्र में लेकर, उन्हें उसका जागीरदार बना दिया था। मुगल शासन के पतन के बाद, राजा घमंड चंद ने मुख्य अधिकार क्षेत्र को अपने अधीन कर लिया और व्यास नदी के किनारे बसे तीरा सुजानपुर शहर को अपनी राजधानी बनाया और उत्तम स्मारकों का निर्माण किया। उन्होंने कलाकारों के लिए चित्रशाला का रखरखाव भी किया।

राजा संसार चंद ने आसपास के सभी पहाड़ी राज्यों में काँगड़ा के प्रभुत्व को स्थापित किया। उनके संरक्षण में तीरा सुजानपुर एक बहुत उन्नत केंद्र के रूप में उभरा। आरंभिक दौर में 'काँगड़ा कलम' के चित्र आलमपुर में विकसित हुए और सबसे परिपक्व चित्र नादौन में चित्रित हुए जहाँ संसार चंद बाद में स्थानांतरित हुए। ये सभी केंद्र व्यास नदी के किनारे बसे थे और आलमपुर, व्यास नदी के साथ कुछ

कालिया मर्दन, भागवत पुराण, काँगड़ा, 1785, राष्ट्रीय संग्रहालय, नयी दिल्ली, भारत

चित्रों में पहचाना जा सकता है। मुख्य काँगड़ा में बहुत थोड़े से चित्र बने, क्योंकि सन् 1786 तक यह राज्य मुगलों के और बाद में सिखों के अधीन रहा।

संसार चंद का पुत्र अनिरूद्ध चंद (1823–31) भी कला का उदार संरक्षक था और कई बार अपने दरबारियों के साथ उसका भी चित्रण किया गया।

अगर देखा जाए तो काँगड़ा शैली सबसे अधिक काव्यात्मक एवं गीतात्मक भारतीय शैली है जो स्थायी सुंदरता और कोमलता के प्रदर्शन में अपनी पहचान बनाती है। महीन रेखा, चटक रंग, अलंकरण में बारीकी और सबसे मुख्य महिला आकृतियों के चेहरे का चित्रण—माथे से नाक तक सीधी रेखाएँ, जो लगभग 1790 में प्रचलन में आईं, काँगड़ा शैली की मुख्य चारित्रिक विशेषताएँ हैं।

भागवत पुराण, *गीत गोविंद*, *नलदमयंति*, *बिहारी-सतसई*, *रागमाला* और *बारहमासा* चित्रण के प्रचलित विषय थे। कई अन्य चित्रों में संसार चंद और उनके दरबार का लेखा-जोखा समाहित है। संसार चंद को नदी किनारे बैठे हुए, संगीत सुनते हुए, नृत्य देखते हुए, त्यौहार पर सभापतित्व करते हुए, तंबू की खूंटी बाँधते और तीरंदज़ी करते हुए, सैनिक अभ्यास आदि करते हुए दिखाया गया है। फत्तू, परखू और खुशलाल आदि काँगड़ा शैली के प्रमुख कलाकार थे।

संसार चंद के राज्यकाल में काँगड़ा शैली के चित्र अन्य पहाड़ी राज्यों की अपेक्षा बहुत प्रखर थे। उन्होंने व्यापक राजनीतिक शक्ति का प्रयोग किया और गुलेर और अन्य क्षेत्र के कलाकारों के साथ एक बड़ी कार्यशाला की मदद करने में सक्षम रहे। काँगड़ा शैली शीघ्र ही तीरा सुजानपुर से, पूर्व में गढ़वाल और पश्चिम में कश्मीर तक फैल गई। 1809 में रणजीत सिंह की मदद से गोरखाओं को भगा दिया गया, हालाँकि संसार चंद ने अपने कलाकारों की चित्रशाला को सहेज कर रखा, परंतु 1785–1805 के बीच हुए उत्कृष्ट कार्य के समानांतर कार्य नहीं हुआ।

गोपियों के साथ होली खेलते कृष्ण, काँगड़ा, 1800, राष्ट्रीय संग्रहालय, नयी दिल्ली, भारत

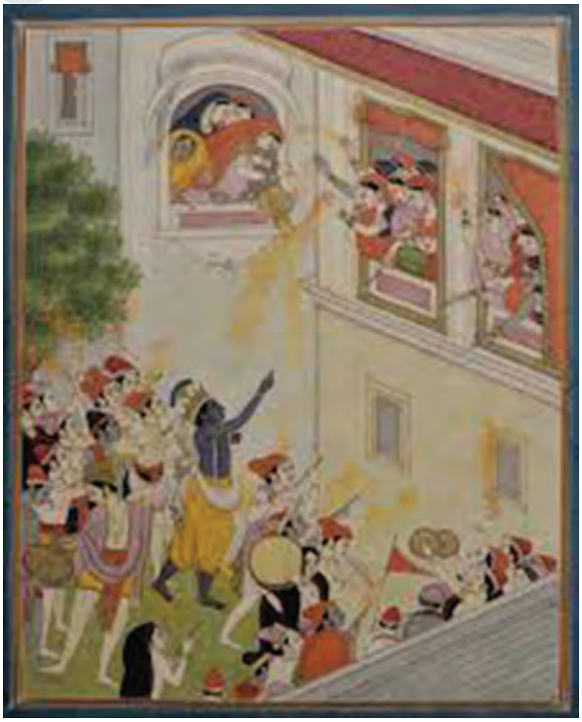

भागवत पुराण चित्रों की शृंखला काँगड़ा कलाकारों की सबसे बड़ी उपलब्धि है। ये चित्र उनकी सहज व्यावहारिक और असामान्य मुद्रा में आकृतियों के प्रस्तुतीकरण के लिए उल्लेखनीय हैं जो नाटकीय दृश्यों में स्पष्ट रूप से चित्रित हुए। माना जाता है कि मुख्य कलाकार की अपने हुनर अर्थात् कौशल पर पकड़ थी, जो नैनसुख का वशंज था।

कृष्ण की लीलाओं का अभिनय का चित्र *रस पंचध्यायी* से लिया गया है, यह *भागवत पुराण* के पाँच अध्यायों का एक समूह है जो रस के दार्शनिक तत्व को समर्पित है। इसमें हृदयस्पर्शी तरीके से गोपियों के कृष्ण के प्रति प्रेम को प्रस्तुत किया गया है। कृष्ण के अचानक उनके मध्य से अदृश्य हो

© NCERT not to be republished

जाने पर उनके दुख की पराकाष्ठा दिखाई देती है। विलग हुए कृष्ण की खोज में निष्फल होने पर वे निराश हो जाती हैं। वे व्याकुल होकर हिरण, वृक्षों और लताओं को संबोधित करते हुए कृष्ण का पता पूछती हैं, परंतु उन्हें किसी से भी प्रश्न का उत्तर नहीं मिलता।

कृष्ण के कार्यों को पुनः स्मरण करना, भागवत पुराण, गुलेर-काँगड़ा, भारत, 1780–85, निजी संग्रह

उनका ध्यान कृष्ण की स्मृतियों में डूब जाता है, गोपियाँ उन्हें याद करके उनकी लीलाओं की नकल करती हैं या अभिनय करती हैं। इनमें से कुछ पूतना-वध, यशोदा द्वारा ओखली से बाँधने पर यमला-अर्जुन की मुक्ति, गोवर्धन पर्वत को उंगुली पर उठाकर इंद्र के क्रोध से भारी वर्षा से बृजवासियों की रक्षा, कालिया नाग को वश में करना और कृष्ण की बाँसुरी द्वारा सम्मोहित करना सम्मिलित है। गोपियाँ अलग-अलग पात्रों को चुनकर उनकी दैवीय लीलाओं का अनुकरण करती हैं।

इन पन्नों (फ़ोलियो) में कलाकार ने इन संवेदनशील आकृतियों की उत्कृष्टता को आत्मसात कर चित्रित किया है। सबसे बायीं ओर के मध्य में एक गोपी जो कृष्ण की भूमिका अदा कर रही है, आगे झुकी हुई दूसरी गोपी के वक्ष को चूस रही है, जो पूतना की भूमिका अदा कर रही है और अपना हाथ सिर पर ले जाकर यह दर्शा

रही है कि उसकी सांसे उखड़ कर वह मर जाएगी। उसके आगे एक दूसरी गोपी जो यशोदा का पात्र अदा कर रही है, राक्षसनी पूतना को मारने के साहसिक प्रदर्शन के बाद, अन्य गोपियों के साथ अपने वस्त्र को पकड़कर बुरी नज़रों से छुड़ाने की भाव भंगिमा में है।

इस समूह के अतिरिक्त दायीं ओर एक गोपी ओखली बनी है, जो कृष्ण का पात्र अदा करने वाली दूसरी गोपी के साथ कपड़े से बंधी है, जबकि उनकी माँ हाथ में छड़ी लिए उलाहना भर रही है। इसके पास वाले समूह में एक गोपी सिर पर साफा बांधे, अपनी ओढ़नी को नुकीले आकार में ऐसे ऊपर उठाए है जैसे गोवर्धन पर्वत, जबकि अन्य उसके नीचे सुरक्षा माँग रहे हैं। चित्र में सबसे बायीं और नीचे एक गोपी बाँसुरी बजाते कृष्ण बनी है जिसके प्रतिक्रिया स्वरूप कुछ गोपियाँ नाच-गा रही हैं और अन्य आगे रेंगते हुए उनकी तरफ बढ़ रही हैं। एक अन्य गोपी अपनी नाराज़ सास से अपने आपको छुड़ाती हुई दिख रही है, जो उसे खींचकर वहाँ जाने से रोक रही है। दायीं ओर नीचे सबसे आलीशान दृश्य है, जिसमें सुनहरी किनार वाले नीले रंग के घुमावदार कपड़े से कई सिर वाले कालिया नाग का रूप ज़मीन पर बनाया गया है और जिस पर गोपी कृष्ण की तरह नृत्य कर रही है।

अष्ट नायिका या आठ नायिका चित्रण पहाड़ी शैली का मुख्य विषय रहा है जिसमें नारी की अलग-अलग प्रवृत्ति और भावपूर्ण चित्रण को समाहित किया गया है। इनमें से कुछ इस प्रकार हैं— उतका, वह जो अपने प्रिय के आगमन की संभावना में धैर्य से प्रतिक्षारत है; स्वाधीनभर्तका, वह जिसका पति उसकी चाह जैसा है; वासकसज्जा, वह जो समुद्र यात्रा से वापस आए अपने प्रिय का इंतज़ार कर रही है और उसके स्वागत में फूलों की सेज सजा रही है; कलहांतरिता, वह जो अपने प्रिय के चाहने पर विरोध करती है और बाद में उसके देर से आने पर पश्चाताप करती है।

अभिसारिका नायिका, काँगड़ा, 1810–20, सरकारी संग्रहालय और कला दीर्घा, चंडीगढ़, भारत

जब भी अष्ट नायिकाओं का उल्लेख होता है, कवियों और कलाकारों की सबसे अधिक पसंदीदा अभिसारिका को एक विशिष्ट स्थान मिलता है। अभिसारिका, वह जो सारी विपत्तियों को पार कर अपने प्रिय से मिलने दौड़ कर चली जाती है। इनमें परिस्थिति की कल्पनाएँ प्रायः बहुत विचित्र हैं और जुनून के साथ नाटकीय संभावनाएँ तथा प्रकृति के विपरीत तत्वों के विरुद्ध नायिका की दृढ़ता है।

इस चित्र में सखी ये बताती है कि नायिका किस तरह रात में जंगल पार करके अपने प्रिय से मिलने जाती है। कवि

not to be republished © NCERT

ज्येष्ठ के महीने में एक जोड़ा, काँगड़ा, 1800, राष्ट्रीय संग्रहालय, नयी दिल्ली, भारत

कहता है योग, लक्ष्य प्राप्ति के ध्येय के कारण ही नायिका रात्रि में घने जंगल में निकलती है।

विस्तृत रूप में अभिसारिका की प्रतिमा एक जैसी ही रही परंतु कई बार कलाकारों ने कुछ भिन्नता के साथ प्रस्तुति की। प्रायः भूत-प्रेत जो सामान्यतः अनेक दृश्यों में दिखाई देते हैं, वे इनमें नहीं दिखते हैं। परंतु रात्रि का गहन अंधकार, बादलों में बिजली की चमक, सर्पों का रात के अंधेरे में फुँकारना, खोखले वृक्षों से अचानक बाहर आना, ज़ेवरातों का गिरना आदि सभी चित्रित किया गया है।

बारहमासा चित्रों में 12 पन्ने (फ़ोलिया) चित्रित हैं जिनमें प्रेम के अलग-अलग भाव समाहित हैं और साल के प्रत्येक माह के प्रतीक हैं, उन्नीसवीं शताब्दी में यह विषय पहाड़ों में बहुत लोकप्रिय रहा।

कविप्रिया के दसवें अध्याय में, केशवदास द्वारा *बारहमासा* का उल्लेख किया गया है। इसमें उन्होंने सबसे गर्म माह ज्येष्ठ, जो मई-जून में पड़ता है, का वर्णन किया है। कलाकार ने भी कवि द्वारा वर्णित सादृश्य को चित्रित करने में अत्यधिक आनंद का अनुभव किया है।

सन् 1780 में काँगड़ा शैली उस समय प्रकाश में आई जब बसोहली शैली की शाखाएँ उभरकर अपनी कुछ चारित्रिक विशेषताओं के साथ चंबा, कुल्लू, नूरपुर, मनकोट, जसरोटा, मंडी, बिलासपुर, जम्मू और अन्य केंद्रों पर निरंतर प्रवाहित हो रही थीं। कश्मीर में (1846–85) काँगड़ा शैली एक स्थानीय शैली 'हिंदू पुस्तक सजावट' के रूप में प्रकाशित हुई। फलत: सिखों ने काँगड़ा कलाकारों को रोज़गार प्रदान किया।

पहाड़ी शैली के संदर्भ में, कोई उसके प्रत्येक केंद्र में चित्रण की कोई एक या अनेक नियमबद्ध चारित्रिक विशेषता को प्राप्त नहीं कर सकता। इसे मोटे तौर पर तीन शैलियों में विभाजित किया गया है— बसोहली, गुलेर और काँगड़ा। विद्वान इसके विषय में अलग-अलग मत रखते हैं। तथापि ये सूचक केंद्र हैं जहाँ से ये शैलियाँ अन्य स्थानों पर पहुँची। इसीलिए, जसरोटा में गुलेर शैली पहचानी गई, जो गुलेर शैली के अंतर्गत जसरोटा केंद्र के रूप में श्रेणीबद्ध हुई। संक्षिप्त में इन अन्य केंद्रों का उल्लेख हुआ है, जहाँ सत्रहवीं एवं अठारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में बसोहली शैली में चंबा के शासकों के छवि चित्र मिलते हैं।

© NCERT not to be republished

कुल्लू शैली नुकीली ठोड़ी, बड़ी-बड़ी आँखे, धूसर रंग का प्रचुर प्रयोग, टेराकोटा-लाल रंग की पृष्ठभूमि आदि विशेषताओं के साथ उत्पन्न हुई। सत्रहवीं शताब्दी के अंतिम चोथाई चरण में *शांगरी रामायण* एक बहुत ही प्रसिद्ध संग्रह कुल्लू घाटी में चित्रित हुआ। चित्रों का यह संग्रह आपस में एक-दूसरे से शैलीगत भिन्नता रखता है। इसलिए माना जाता है कि अलग-अलग समूह के कलाकारों ने इन्हें बनाया होगा। यह मत है कि जब बसोहली शैली स्वतः पल्लवित हो रही थी और काँगड़ा शैली के रूप में परिपक्व हो रही थी, नूरपुर के कलाकारों ने काँगड़ा की सुंदर आकृतियों के साथ, बसोहली के चमकीले रंगों को बरकरार रखा।

बसोहली एवं मनकोट के वैवाहिक संबंधों की वजह से कुछ कलाकार बसोहली से मनकोट स्थानांतरित हुए, अतः वैसी ही चित्रण शैली वहाँ भी विकसित हुई। जबकि जसरोटा में संरक्षक बलवंत सिंह थे और शैली, जो दरबारी कलाकार नैनसुख द्वारा बनाए उनके अनेक छविचित्रों के लिए प्रसिद्ध थी, जिसने आरंभिक सादगीपूर्ण बसोहली शैली से नवीन परिष्कृत शैली तक का नेतृत्व किया था। नैनसुख की यह शैली गुलेर-काँगड़ा शैली के नाम से भी जानी जाती है।

मंडी के शासक विष्णु और शिव के अनन्य भक्त थे, इसलिए कृष्ण लीला विषय के अतिरिक्त शैव विषय भी चित्रित हुए। मोलाराम नाम एक कलाकार था जो गढ़वाल शैली से संबद्ध था। उसके हस्ताक्षर किए हुए कई चित्र प्राप्त हुए हैं। यह शैली संसार चंद के दौर की काँगड़ा शैली से प्रभावित थी।

अभ्यास

1. प्रकृति का चित्रण पहाड़ी लघुचित्रों में हर जगह दिखाई देता है। आपके अनुसार इसके क्या कारण हो सकते थे?
2. पहाड़ी लघु चित्रकला की प्रमुख शैलियाँ कौन-कौन सी हैं और किन स्थानों पर उनका विस्तार हुआ? वे आपस में एक-दूसरे से कैसे भिन्न थे? मानचित्र पर सभी पहाड़ी (हिमालय) शैलियों को अंकित कीजिए।
3. अपनी पाठ्यपुस्तक से कोई कहानी या कविता चुनकर, पहाड़ी लघुचित्र शैली की किसी भी शैली में चित्रित कीजिए।
4. निम्नलिखित की समीक्षा कीजिए—

   (क) नैनसुख (ख) बसोहली चित्र

   (ग) अष्ट नायिकाएँ (घ) काँगड़ा कलम

© NCERT not to be republished

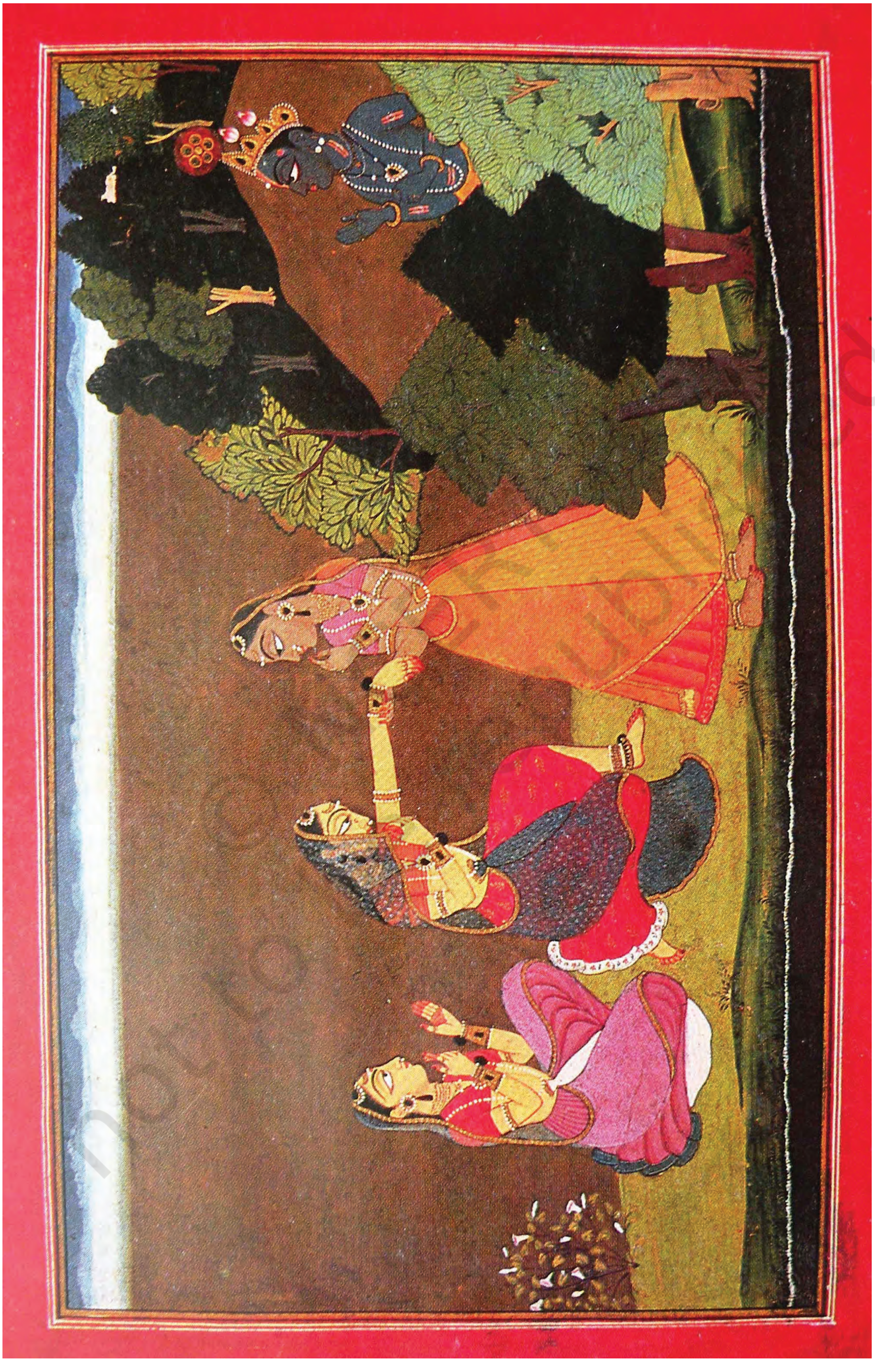

प्रतीक्षारत कृष्ण और संशयशील राधा

कलाकार पंडित सिऊ के दो पुत्र थे— मानक या मनकू और नैनसुख। पहाड़ी शैली को बसोहली शैली के स्तर से काँगड़ा की कुशलता तक पहुँचाने में इन दोनों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। उनके पुत्र काँगड़ा के स्वर्णिम युग का प्रतिनिधित्व करते हैं। यह चित्र गुलेर-काँगड़ा दौर के अंतर्गत आता है जबकि बदलाव के लिए प्रयोगों की शुरुआत पहले ही हो गई थी।

गीत गोविंद मनकू का उत्कृष्ट चित्र संग्रह है। जैसा कि पहले उल्लेख हुआ है कि जयदेव द्वारा रचित या संयोजित *गीत गोविंद* का आरंभ यमुना नदी के किनारे राधा-कृष्ण की प्रेम लीला के वर्णन से होता है। कवि द्वारा वसंत ऋतु का रमणीय विवरण और कृष्ण का अन्य गोपियों के साथ रासलीला का सुंदर वर्णन किया गया है। कृष्ण द्वारा अनदेखी किए जाने पर दिल से दुखी राधा अपनी सखी के साथ कुंज में उदास बैठी है। जहाँ सखी वर्णन करके बता रही है कि कृष्ण कैसे सुंदर गोपियों से घिरे हैं। कुछ समय बाद कृष्ण ग्लानि महसूस करते हैं और राधा को ढूँढ़ते हैं, परंतु वह उन्हें नहीं मिलती, वह उनके लिए विलाप करते हैं। तब संदेशवाहक गोपी राधा के पास जाती है और उनके लिए कृष्ण की उत्कंठा व्यक्त करती है। अंततः राधा उनसे मिलने के लिए तैयार हो जाती हैं और यही आध्यात्मिक एकात्म का प्रवाह है। दार्शनिक स्तर पर यह एक नाटक है जिसमें पात्र दैवीय हैं— जहाँ राधा एक भक्त या आत्मा है और कृष्ण परमात्मा, जिनमें वह डूब जाती है। यहाँ प्रेमलीला मानवीय है।

इस चित्र में राधा शर्माते हुए दिखाई दे रही हैं और वे झाड़ियों में जाने से संकोच कर रही हैं जबकि कृष्ण बेसब्री से इंतज़ार कर रहे हैं।

कलाकार की कल्पना का स्रोत चित्र के पीछे वर्णित किया गया है, जिसका अनुवाद इस प्रकार है—

"राधा! सखियाँ तुम्हारे प्रेम-युद्ध में तुम्हारी आत्मा के अभिप्राय को समझ गई हैं। अब तुम संकोच छोड़ दो, अपने कटिसूत्र को खुशी से खनखनाने दो और अपने प्रेमी से मिलने के लिए आगे बढ़ो। राधा! अपनी प्रिय दासियों के साथ आगे बढ़ो; उंगलियों से अपनी सखी का हाथ थाम लो। अपने प्रेमी से प्रणय के लिए, अपनी चूड़ियों को खनकने दो और अपना मार्ग तय करो।"

जयदेव के ये सुंदर गीत कृष्ण के श्रद्धालुओं के होठों पर सदैव रहे होंगे।

अंततः राधा अपनी सखियों का आग्रह स्वीकार कर लेती हैं। जयदेव इसे इस तरह से वर्णित करते हैं—

"तब वह और देर नहीं करती, सीधे प्रवेश करती है, उनके पग थोड़े धीमे पड़ रहे हैं किंतु उनका चेहरा अकथनीय प्रेम को दर्शा रहा है, उनकी चूड़ियों का संगीत प्रवेश हुआ, लज्जा जो उनकी झुकी हुई नज़रों पर थी, अब ओझल हो गई..."

© NCERT not to be republished

बलवंत सिंह नैनसुख के साथ एक चित्र देखते हुए

चित्र में जसरोटा के राजकुमार बलवंत सिंह को बड़े जतन से चित्र को देखते हुए दर्शाया गया है, जिसे उन्होंने अपने हाथों में पकड़ा है। एक व्यक्ति सिर झुकाए हुए शिष्टतापूर्वक खड़ा है, वह अन्य कोई नहीं, कलाकार नैनसुख है। यह चित्र शायद ऐसा बिरला चित्र है जिसमें नैनसुख ने अपने आपको अपने संरक्षक के साथ चित्रित किया है।

बलवंत सिंह अपने महल में बैठे हैं, हरे-भरे वृक्षों से परिपूर्ण दृश्य की अनदेखी कर रहे हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि संध्या का समय है और नैनसुख का व्यवस्थित संयोजन अपने आप में वैराग्य, शांति और स्थिरता को प्रदर्शित करता है जो बलवंत सिंह के स्वभाव को चित्र में दर्शाते हैं। वे हुक्का पी रहे हैं जो सामान्यतः कार्य की व्यस्तता के बीच कुछ पलों के विश्राम के लिए करते थे। संगीतज्ञों को बड़ी निपुणता से चित्र में किनारे पर चित्रित किया गया है जो उनकी उपस्थिति को दर्शाता है। चित्र में उनकी स्थिति ऐसी प्रतीत होती है कि संगीत की प्रस्तुति ध्यानाकर्षण के लिए नहीं, बल्कि नैपथ्य में हलकी धुन के लिए है, जिससे माहौल शांत हो रहा है। साथ-ही-साथ बलवंत सिंह कृष्ण को दर्शाते चित्र की बारीकियों में तल्लीन हैं।

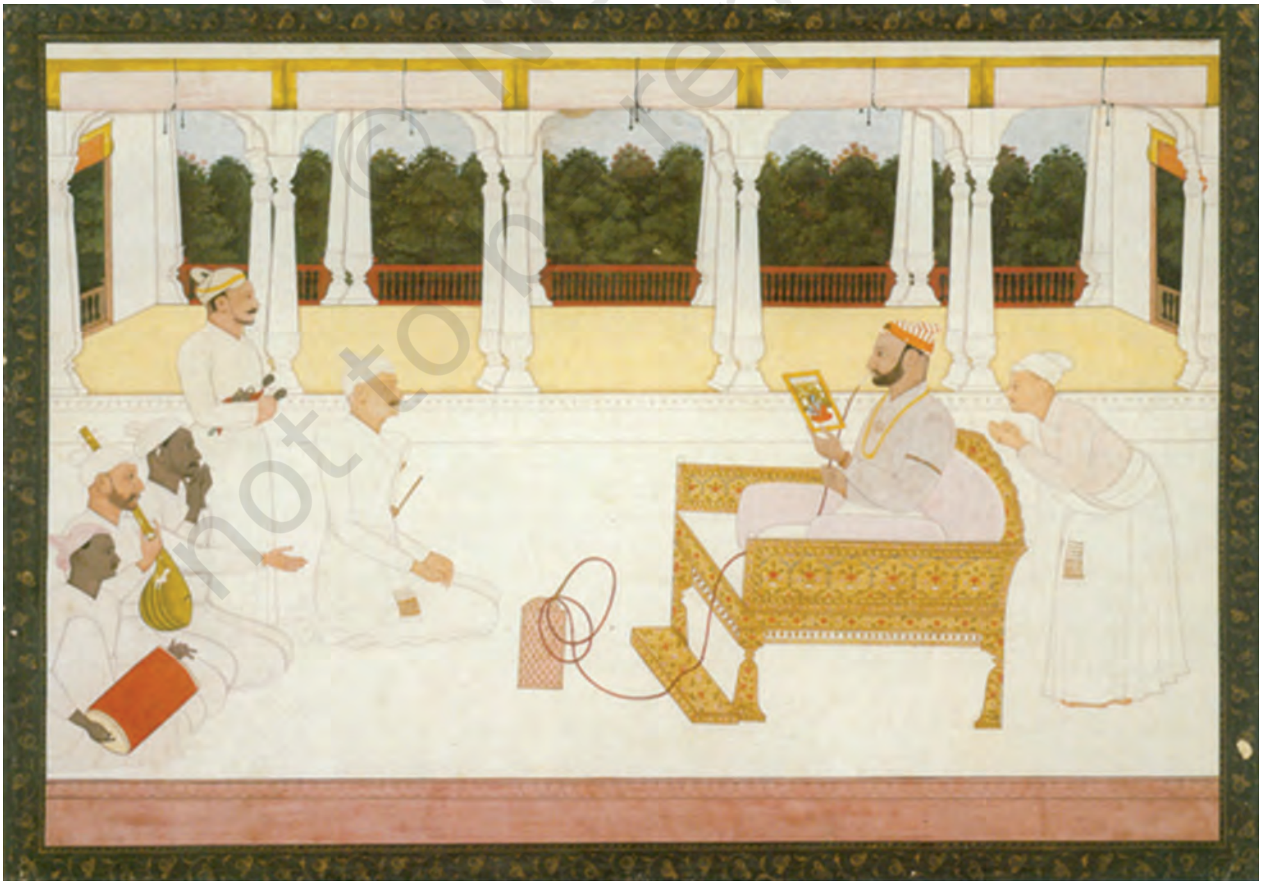

नंद, यशोदा और कृष्ण

यह चित्र भी *भागवत पुराण* के एक दृश्य को दृष्टांत करता है जिसमें नंद अपने परिवार और रिश्तेदारों के साथ वृंदावन की ओर यात्रा करते हुए अंकित किए गए हैं। उन्होंने देखा कि गोकुल राक्षसों से पीड़ित है, जो कृष्ण को अत्यंत परेशान करने में जुटे हुए हैं, इसलिए उन्होंने सुरक्षित स्थान पर जाने का निर्णय लिया। चित्र में नंद बैलगाड़ी पर बैठे, समूह का नेतृत्व कर रहे हैं और उनके पीछे आ रही बैलगाड़ी में दोनों भाई— कृष्ण एवं बलराम, अपनी माताओं— यशोदा एवं रोहिणी के साथ बैठे हैं। स्त्री एवं पुरुष अपने साथ गृहस्थी का सामान और बच्चों को लेकर साथ में चल रहे हैं। उनके भावों और गतिविधियों का अंकन बहुत बारीकी से किया गया है। आपस में बातचीत करते हुए उनके सिर का एक ओर झुकना, सिर पर रखे भार से झुकी हुई आँखों से थकान के भाव को प्रदर्शित करना और सिर पर रखे बरतन को खीचें हुए हाथों से कस कर पकड़ना आदि अद्‌भुत निरीक्षण एवं उत्कृष्ट कौशल के उदाहरण हैं।

जैसे कि इस अध्याय के आरंभ में उल्लेख किया गया है कि काँगड़ा (कलाकार) चित्रकारों ने प्राकृतिक दृश्यों का बहुत बारीकी से निरीक्षण किया है और स्वाभाविक तरीके से प्रदर्शित किया है। बारीकियों को अर्थपूर्ण तरीके से अभिव्यक्त किया गया है। छायाचित्रों सी समानता जो चित्र को यथार्थता प्रदान करती है, वह भी हम इस संयोजन में देख सकते हैं।

© NCERT not to be republished

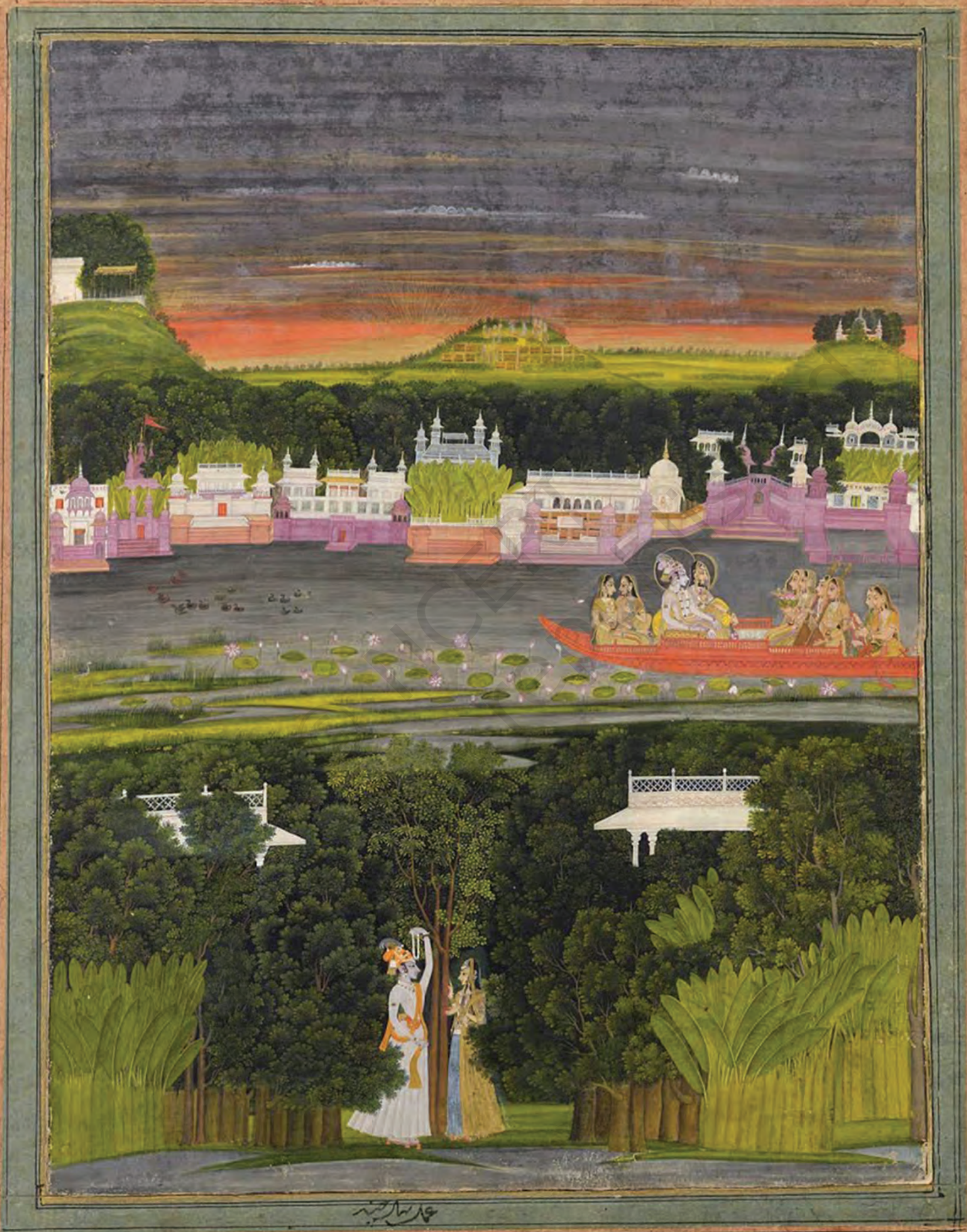

बंगाल स्कूल और सांस्कृतिक राष्ट्रवाद 6

कंपनी चित्रकला

अंग्रेज़ों के आने से पूर्व भारत में कला का निर्माण विभिन्न उद्देश्यों से किया जाता था। कभी इसे मंदिर की दीवारों पर प्रतिमाओं के रूप में देखा गया तो कभी झोपड़ियों की दीवारों के अलंकरण के रूप में और कभी हम लघुचित्रों के रूप में पांडुलिपियों में इसे देख सकते हैं। अठारहवीं शताब्दी में जब ईस्ट इंडिया कंपनी भारत आई और उसने भारत में उपनिवेशवाद की स्थापना की तो अंग्रेज वे भारतीय कला देखकर उससे आकर्षित हुए। विशेषकर यहाँ के विभिन्न लोगों के रहन-सहन, जीव-जंतु और वनस्पति से प्रभावित होकर उन्होंने कई स्थानीय कलाकारों को कमीशन पर रखकर कथात्मक चित्रण करवाया। ये स्थानीय कलाकार मुर्शिदाबाद, लखनऊ और दिल्ली के थे, जिन्होंने भारी संख्या में कागज़ पर चित्र बनाए। अपने नए संरक्षक को खुश करने के लिए इन कलाकारों ने अपने आसपास की जीवन शैली को पारंपरिक तरीके से चित्रित करना शुरू किया। इसका आशय यह है कि उन्होंने यथार्थवादी चित्रण करना शुरू कर दिया जो यूरोपीय शैली का एक गुण है। यह मिश्रित कला, भारतीय और यूरोपीय कला का सम्मिश्रण है जिसे 'कंपनी शैली' के नाम से जाना जाता है। इस शैली के चित्रों की भारत में रह रहे अंग्रेज़ों के साथ-साथ ब्रिटेन में भी बहुतायत से माँग थी।

गुलाम अली खान,
वेश्याओं का समूह,
कंपनी पेंटिंग, 1800–25,
सैन डिएगो कला संग्रहालय,
कैलिफोर्निया, संयुक्त राज्य अमेरिका

राजा रवि वर्मा

उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में भारत में छायाचित्रण (फ़ोटोग्राफ़ी) के आने के साथ चित्रकला की गुणवत्ता में गिरावट आई क्योंकि कैमरे द्वारा अधिक वास्तविक दस्तावेज़ तैयार किए जाने लगे। हालाँकि ब्रिटिश कलाकारों द्वारा स्थापित किए गए कला विद्यालयों में तैलीय रंग प्रयोग किए गए जो अकादमिक शैली के चित्रों में प्रयोग में लाए जाते थे। इनमें भारतीय विषय को चित्रित करने के लिए यूरोपीय तैलीय रंगों का प्रयोग किया जाता था। इस प्रकार की चित्रकला के सबसे सफल उदाहरण कला स्कूलों के बाहर पाए गए। इस प्रकार की शैली केरल में त्रावणकोर राज्य के राजा रवि वर्मा द्वारा निर्मित चित्रों में दिखाई देती है। भारतीय राजप्रसादों में लोकप्रिय यूरोपीय शैली के चित्रों की नकल चित्रित करने का प्रचलन था, जहाँ उन्होंने यथार्थवादी शैली में महारत हासिल की और *रामायण*, *महाभारत* जैसे महाकाव्यों के दृश्यों को चित्रित किया। समय के साथ वह इतने लोकप्रिय हो गए कि उनके चित्रों की ओलियोग्राफ़ी बाज़ार में बेची जाने लगी तथा जनसाधारण के घरों में कैलेंडर के रूप में उनके बनाए धार्मिक चित्र सजाए जाने लगे। उन्नीसवीं शताब्दी के अंत तक भारत में राष्ट्रवाद के उदय के साथ रवि वर्मा द्वारा निर्मित इस शैक्षणिक शैली को विदेशी माना जाने लगा। इसके साथ ही भारतीय मिथकों तथा इतिहास को दिखाने के लिए इस शैली को पश्चिमी शैली माना जाने लगा। इस तरह की राष्ट्रवादी सोच के बीच बीसवीं सदी के पहले दशक में 'बंगाल स्कूल ऑफ़ आर्ट' की स्थापना हुई।

बंगाल स्कूल

आधुनिक एवं राष्ट्रवादी स्कूल का प्रारंभ सर्वप्रथम बंगाल से ही हुआ जो केवल इस क्षेत्र तक ही सीमित नहीं था। यह एक कला आंदोलन था और एक चित्रकला शैली थी, जो ब्रिटिश सत्ता के केंद्र कलकत्ता में आरंभ हुई, लेकिन कुछ ही समय में यह देश के विभिन्न हिस्सों में फैल गई (यहाँ तक कि शांतिनिकेतन भी इसमें शामिल था जहाँ भारत का पहला कला विद्यालय स्थापित किया गया) यह राष्ट्रवादी आंदोलन (स्वदेशी) से जुड़ा हुआ था जिसकी अगुवाई ठाकुर अवनीन्द्रनाथ टैगोर (1871–1951) ने की थी। जिन्हें ब्रिटिश प्रशासन और कलकत्ता स्कूल ऑफ़ आर्ट के प्रधानाचार्य ई.बी. हैवेल (1861–1984) से पूरी सहायता मिली। हैवेल और

© NCERT not to be republished

टैगोर दोनों ही कंपनी शैली के आलोचक थे। वे दोनों दृढ़ता से एक नए शैली के चित्र बनाने में विश्वास रखते थे। जो न केवल विषय में बल्कि चित्रकला शैली में भी भारतीय हो। उनके लिए मुगल चित्र और पहाड़ी लघु चित्र प्रेरणा के महत्वपूर्ण स्रोत थे जो विषय और शैली दोनों से भारतीय थे।

अवनीन्द्रनाथ टैगोर और ई. बी. हैवेल

वर्ष 1896, भारतीय इतिहास में दृश्य कला के लिए महत्वपूर्ण था। ई. बी. हैवेल और अवनीन्द्रनाथ टैगोर दोनों ने अनुभव किया कि कला में भारतीय शैली की विशेषताओं के विश्लेषण की आवश्यकता है। इस उद्देश्य से उन्होंने गवर्मेंट कॉलेज ऑफ़ आर्ट की स्थापना की, जो वर्तमान समय में गवर्मेंट कॉलेज ऑफ़ आर्ट एंड क्राफ़्ट, (वर्तमान कोलकाता) के नाम से प्रसिद्ध है। इसी तरह के कला विद्यालय लाहौर, बंबई (वर्तमान मुंबई) एवं मद्रास में स्थापित किए गए थे। जिनका उद्देश्य क्राफ़्ट, धातु शिल्पों तथा फ़र्नीचर जैसे शिल्पों पर ज़्यादा था, जबकि कलकत्ता के विद्यालय का रुझान ललित कला में था। ई.बी. हैवेल और अवनीन्द्रनाथ टैगोर ने कला में भारतीय परंपरा की तकनीक और विषयों को शामिल करने और प्रोत्साहित करने के लिए एक नया पाठ्यक्रम तैयार किया। टैगोर के प्रसिद्ध चित्र जर्नीस एण्ड में पहाड़ी और मुगल शैली का प्रभाव है, जो एक नवीन भारतीय शैली को जन्म देती है।

जैसा कि कला इतिहासकार पार्थ मित्तर लिखते हैं, "अवनीन्द्रनाथ टैगोर के छात्रों की पहली पीढ़ी भारतीय कला की गुम हुई शैली और विषय को पुर्नप्राप्त करने में लगी हुई थी।" अवनीन्द्रनाथ टैगोर '*इंडियन सोसायटी ऑफ़ ओरियंटल आर्ट*', नामक एक महत्वपूर्ण पत्रिका के मुख्य कलाकार और रचनाकार थे, जिससे आधुनिक भारतीय कलाकारों को अपने भव्य इतिहास से सीखने का अवसर मिला। इस प्रकार वे कला में स्वदेशी के प्रथम प्रमुख समर्थक थे, जिन्होंने बंगाल स्कूल ऑफ़ आर्ट के निर्माण में अपना योगदान दिया। बंगाल स्कूल द्वारा आधुनिक चित्रकला के विकास के लिए पृष्ठभूमि तैयार की गई। टैगोर द्वारा प्रारंभ की गई नई दिशा के फलस्वरूप क्षितिंद्रनाथ मजुमदार (रास-लीला) तथा मुहम्मद अब्दुर रहमान चुगतई (राधिका) जैसे युवा कलाकार सामने आए।

शांतिनिकेतन—प्रारंभिक आधुनिकतावाद

शांतिनिकेतन की स्थापना के बाद कवि और दार्शनिक रवींद्रनाथ टैगोर ने कला भवन के नेतृत्व के लिए अवनीन्द्रनाथ टैगोर के शिष्य नंदलाल बोस को आमंत्रित किया। कला भवन, रवींद्रनाथ टैगोर द्वारा स्थापित विश्वभारती विश्वविद्यालय का हिस्सा था जो कि पहला राष्ट्रीय कला विद्यालय था। कलाभवन में, नंदलाल बोस के चित्रों में भारतीय शैली के साथ-साथ बौद्धिकता और

नंदलाल बोस, ढाकी, हरिपुरा पोस्टर, 1937, एन.जी.एम.ए., नयी दिल्ली, भारत

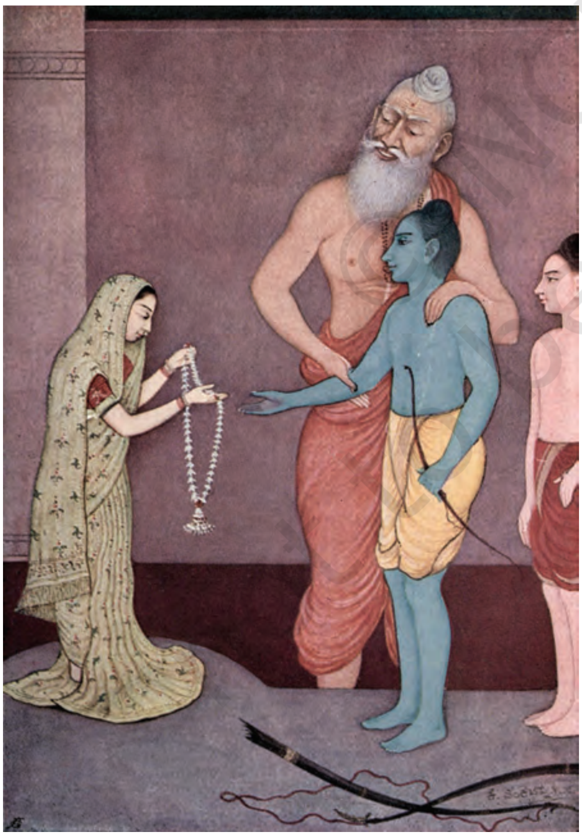

के. वेंकटप्पा, राम का विवाह, 1914, निजी संग्रह, भारत

कलात्मकता का भी समावेश हुआ। शांतिनिकेतन के आसपास की लोक कला की भाषा पर उन्होंने विशेष ध्यान दिया। नंदलाल बोस ने नयी धारणाओं या विचारों की शिक्षा में कला का महत्व समझते हुए 'वुडकर' की तकनीक से चित्र बनाकर पुस्तिकाएँ बनाईं। इसी कारण महात्मा गाँधी ने उन्हें 1937 में हरिपुरा में कांग्रेस अधिवेशन में प्रदर्शन के लिए लगाए जाने वाले पैनलों को चित्रित करने के लिए आमंत्रित किया। ये चित्र 'हरिपुरा पोस्टर' के नाम से प्रसिद्ध हुआ जिसमें ग्रामीण लोगों की गतिविधियों को चित्रित किया गया, जैसे—एक संगीतकार ढोल बजाता हुआ, एक किसान खेत को हल से जोतता हुआ, एक महिला दूध मंथती हुई इत्यादि। इन चित्रों को उन्होंने विविध रंगों से चित्रित किया और राष्ट्र निर्माण में उनके योगदान को दिखाया। इन पोस्टरों में महात्मा गाँधी के विचारों को कला के माध्यम से तथा भारतीय समाज के विभिन्न वर्गों को शामिल कर समाजवादी दृष्टि से प्रदर्शित किया गया है।

नंदलाल बोस ने कला भवन में जिस प्रकार से कला की शिक्षा दी उससे भारतीय युवा कलाकार राष्ट्रवादी दृष्टिकोण से प्रभावित हुए। यह कई कलाकारों के लिए प्रशिक्षण केंद्र बन गया जिन्होंने देश के अन्य भागों में केंद्र बनाए जिसका प्रमुख उदाहरण दक्षिण भारत में के. वेंकटप्पा हैं। नंदलाल बोस चाहते थे कि कला सिर्फ़ उच्च वर्ग तक ही सीमित न रहे बल्कि सामान्य जनता तक पहुँचे।

जामिनी रॉय, आधुनिक भारतीय कला के विशिष्ट उदाहरण हैं, जिन्होंने आधुनिक कला विद्यालयों में दिया जाने वाला अकादमिक प्रशिक्षण प्राप्त करके उसे अस्वीकार कर गाँवों की सपाट और रंगीन शैली को अपनाया। उन्होंने अपने चित्रों का विषय ग्रामीण समाज की महिलाओं और बच्चों को बनाया। वह चाहते थे कि उनके चित्र सरल और आसान हों, ताकि वे व्यापक रूप से सामान्य जनजीवन तक भी पहुँच सकें।

हालाँकि ब्रिटिश काल में भारतीय व यूरोपीय दोनों कलाओं का अपना शैलीगत संघर्ष जारी रहा। उदाहरण के लिए, लुटियन की दिल्ली की इमारत का बंबई स्कूल ऑफ़ आर्ट के कलाकारों द्वारा अलंकरण करवाया गया जो यथार्थवादी प्रधानाचार्य ग्लेडस्टोन सोलोमन की शैली का अनुसरण करते

थे। वहीं दूसरी तरफ बंगाल स्कूल के कलाकारों को ब्रिटिश के निरीक्षण में लंदन स्थित भारतीय भवन के अलंकरण की अनुमति दी गई।

अखिल एशियावाद और आधुनिकतावाद

कंपनी शैली ने यूरोपीय अकादमिक शैली और भारतीय शैली को पसंद करने वालों को विभाजित कर दिया। परंतु 1905 में बंगाल विभाजन के बाद आंदोलन अपने चरम पर था तथा ये कलाकृतियाँ विचार में दिखने लगी थीं। कला इतिहासकार आनंद कुमारस्वामी ने स्वदेशी कला के बारे में लिखा है जहाँ वे जापानी कलाकार काकुजो ओकाकुरा, जो कलकत्ता में रवीन्द्रनाथ टैगोर से मिलने आए थे, उनके विचारों के साथ थे। वे, अखिल-एशियाई विचार से भारत आए थे जिससे वे सभी एशियाई देशों के साथ जिनमें भारत भी शामिल हो, पार पाश्चात्य साम्राज्यवाद का विरोध कर सकें। उनके साथ दो जापानी कलाकार भी आए थे जो शांतिनिकेतन जाकर भारतीय छात्रों को वॉश पेंटिंग सिखा रहे थे जो पाश्चात्य तैल रंग के चित्रण का विकल्प था।

जहाँ एक ओर अखिल एशियावाद की लोकप्रियता बढ़ रही थी, वहीं आधुनिक यूरोपीय कला भी भारत आई। अत: वर्ष 1922 को महत्वपूर्ण माना जाता है जब पॉल क्ली, कैंडिन्स्की जैसे कलाकार जो जर्मनी के बाहौस का हिस्सा थे, उनकी प्रदर्शनी कलकत्ता में की गई। इन यूरोपीय कलाकारों ने यथार्थवादी अकादमिक शैली का परित्याग कर दिया था जिससे स्वदेशी कलाकार प्रेरित हुए। उन्होंने अमूर्तकला का सृजन किया जिसमें ज्यामितीय आकारों का प्रयोग किया गया, जैसे— वर्ग, रेखा, वृत्त जिससे सर्वप्रथम सामान्यजन और कलाकारों का सीधा संपर्क आधुनिक कला से हुआ। यह प्रभाव अवनीन्द्रनाथ टैगोर के भाई गगनेंद्रनाथ टैगोर के चित्रों में देखा जा सकता था जिसमें उन्होंने ज्यामितीय आकारों को लेकर आधुनिक कला को दिखाया तथा इसमें पाश्चात्य कला शैली का उपयोग करते हुए कई चित्र बनाए। इनमें इमारतों के अंदरूनी हिस्से को ज्यामितीय शैली में दर्शाया गया है। इसके अलावा उनकी कैरीकेचर (कार्टून) बनाने में भी गहरी रुचि थी, जिसमें वह अकसर यूरोपीय जीवन शैली की नकल करने वाले अमीर वर्ग के बंगाली लोगों का मज़ाक उड़ाते थे।

आधुनिकतावाद की विभिन्न अवधारणाएँ—पश्चिमी और भारतीय

जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है कि पश्चिमी और भारतीय, आधुनिक और पारंपरिक कलाओं के बीच आगे बढ़ने की होड़ थी। बंगाली बुद्धिजीवी, बिनॉय सरकार ने अपने लेख 'द फ्यूचररिज़्म ऑफ़ यंग एशिया' में पारंपरिक कला की तरफ

© NCERT not to be republished

अमृता शेरगिल, ऊँट, 1941, राष्ट्रीय आधुनिक कला संग्रहालय, नयी दिल्ली, भारत

ध्यान न देकर यूरोपीय आधुनिक कला और कला पर लिखे लेखों पर ध्यान दिया, जो एशिया के नवयुवकों का भविष्यवाद था। उनके विचार में भारतीय बंगाल स्कूल समकालीन और आधुनिकता का विरोधी था। इसी तरह, एक अंग्रेज़, ई.बी. हैवेल ने भारतीय कला को आधुनिक बनाने और लोक कला की वापसी में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई और अवनीन्द्रनाथ का पूरा सहयोग किया।

अमृता शेरगिल के बारे में अगले अध्याय में चर्चा करेंगे, जो इन दोनों के विचार के सम्मिश्रण का सबसे अच्छा उदाहरण हैं। वे भारतीय शैली में दिखाए जाने वाले बाहौस प्रदर्शनी का उपयोग अपनी कला शैली में करती थीं।

भारत में उपनिवेशवादी कला और परंपरावाद के बीच होने वाले संघर्ष के बाद यहाँ आधुनिक कला का जन्म हुआ। कंपनी शैली ने कला के नए संस्थानों, जैसे— कला स्कूल, प्रदर्शनी दीर्घा, कला पत्रिका और कला समाज आदि की शुरुआत की। राष्ट्रवादी कलाकारों ने इन परिवर्तनों को स्वीकार करते हुए कला में और भी अधिक भारतीय गुणों को सम्मिलित कर भारतीय कला को एशियाई कला के रूप में पहचान दिलाई। यह भारतीय विरासत आधुनिक भारतीय कला के इतिहास पर गहरा प्रभाव छोड़ने वाली थी तथा यह कला अंतर्राष्ट्रीय कला में अपना स्थान बढ़ाती रहेगी, जिसमें पश्चिमी और भारतीय कला का समावेश होगा।

अभ्यास

1. पिछले दो सप्ताह के स्थानीय समाचार पत्र लीजिए। इनमें से वे चित्र और लेख चयनित करें जिन्हें आप भारत के आधुनिक लोकतांत्रिक राज्य के जीवन के लिए महत्वपूर्ण मानते हैं। इन दृश्यों और लेखों की सहायता से एक एल्बम संकलित करें जो समकालीन दुनिया में एक स्वतंत्र सार्वभौम भारत की कहानी को दर्शाता है।
2. राष्ट्रीय कला शैली के निर्माण में बंगाल स्कूल के कलाकारों के महत्व पर टिप्पणी करें?
3. अवनीन्द्रनाथ टैगोर द्वारा चित्रित किसी एक चित्र पर अपने विचारों को लिखें।
4. भारत की किन कला परंपराओं ने बंगाल स्कूल के कलाकारों को प्रेरित किया?
5. जामिनी रॉय ने चित्रकला की अकादमिक शैली को त्यागने के बाद कौन-से विषयों का चित्रांकन किया?

© NCERT not to be republished

टिलर ऑफ़ द सॉयल

यह चित्र 1938 में कांग्रेस के हरिपुरा सम्मेलन के लिए नंदलाल बोस द्वारा बनाए गए पैनलों में से एक है। इस पट्टिका (पैनल) में, एक किसान को खेत की जुताई करते हुए दिखाया गया है— एक गाँव में आम आदमी के दैनिक क्रियाकलापों का चित्रण किया गया है। बोस ने ग्रामीण जीवन के तत्वों या अनुभवों को दर्शाने के लिए स्थानीय ग्रामीणों या ग्रामवासियों का कलम और स्याही से चित्रण किया है जिसमें उन्होंने गहरे टेम्परा से प्रभावशाली तिरछी रेखाओं के लिए चौड़े ब्रुश का प्रयोग किया है। इस तकनीक और शैली का प्रयोग 'पटुआ' लोक कला प्रथा की याद दिलाता है। लोक शैली का विशेष रूप से प्रयोजन, ग्रामीण जीवन दर्शाने के लिए किया गया है। साथ ही साथ यह गाँधी के ग्रामीण जीवन के राजनीतिक विचारों को भी प्रस्तुत करता है। पैनल की पृष्ठभूमि में एक मेहराब का चित्रण है। बोस द्वारा निर्मित इन पट्टिकाओं पर अजंता के भित्ति चित्रों और मूर्तियों के प्रभावों को— अलंकरण की अभिव्यक्ति, सुस्पष्ट रंग संयोजना और प्रकृति के साथ सम्मेलन के रूप में देखा जा सकता है। बोस की देखरेख में कला भवन में 400 से अधिक पोस्टर तैयार किए गए, जो गाँधी के विचारों से प्रभावित थे। ये पोस्टर आम लोगों को राष्ट्र के निर्माण की प्रक्रिया में अहम पात्र के रूप में दर्शाते हैं। इस तरह देश के नैतिक चरित्र के निर्माण के लिए बोस ने कला का उपयोग किया।

© NCERT not to be republished

रास-लीला

यह एक जलरंग चित्र है जिसमें वॉश तकनीक का प्रयोग किया गया है। यह चित्र क्षितिंद्रनाथ मजूमदार (1891–1975) द्वारा बनाया गया है। यह चित्र श्रीकृष्ण के दिव्य जीवन को दर्शाता है। मजूमदार, अवनीन्द्रनाथ टैगोर के शुरुआती छात्रों में से एक थे, जिन्होंने कुछ विषयांतर या परिवर्तनों के साथ वॉश तकनीक का विस्तार किया। ग्रामीण, दुबली-पतली आकृतियाँ, साधारण भाव-भंगिमाएँ, रमणीय संरचना और कोमल जलरंग उनकी शैलीगत विशेषताओं को व्यक्त करते हैं। उन्होंने पौराणिक और धार्मिक विषयों को चित्रित किया है। भक्ति मार्ग के अनुयायियों के रूप में धार्मिक अवधारणाओं की उनकी समझ से प्रेरित— राधा का मन भंजन, सखी और राधा, लक्ष्मी और श्री चैतन्य का जन्म, अभिव्यक्ति की उनकी असाधारण कला के कुछ उदाहरण हैं। इस चित्र में कृष्ण, राधा और सखियों के साथ नाच रहे हैं, पृष्ठभूमि में पेड़ एक साधारण गाँव का दृश्य है, जैसा कि *भागवत पुराण* और *गीत गोविंद* में चिह्नित है। मानव आकृतियों और उनके कपड़ों के चित्रण के लिए साधारण, प्रवाहित, कोमल रेखाओं का उपयोग किया गया है। पात्रों की उदात्त मनोदशा को खूबसूरती से दर्शाया गया है। कृष्ण और गोपियों को एक ही अनुपात में बनाया गया है। इस प्रकार, मनुष्यों और भगवान को एक ही स्तर पर दर्शाया गया है।

© NCERT not to be republished

राधिका

मुहम्मद अब्दुल रहमान चुगतई (1898–1975) ने वॉश और टेम्परा तकनीक का प्रयोग करते हुए कागज़ पर यह चित्र बनाया है। वह शाहजहाँ के मुख्य वास्तुकार उस्ताद अहमद के वंशज थे जिन्होंने दिल्ली में जामा मस्जिद और लाल किला तथा आगरा का ताजमहल डिज़ाइन किया था। वह अवनीन्द्रनाथ टैगोर, गगनेंद्रनाथ टैगोर और नंदलाल बोस से प्रभावित थे। उन्होंने वॉश तकनीक में प्रयोग किए और मुगल पांडुलिपियों और पुराने फ़ारसी चित्रों में सुलेख की रेखाओं का प्रयोग किया। यह चित्र एक नाज़ुक वातावरण को दर्शाता है। इस चित्र में राधिका को एक जलते दीपक से दूर जाते हुए दिखाया गया है जहाँ पृष्ठभूमि का वातावरण उदासीन है। यह चित्र हिंदू पौराणिक कथाओं पर आधारित है। उन्होंने महान विभूतियों, लोक कथाओं, भारतीय-इस्लाम संबंधी और राजपूत तथा मुगल आदि सभी विषयों पर चित्र बनाए। उन्होंने राधिका नामक इस चित्र में पृष्ठभूमि की रोशनी और छाया प्रकाश का जो सरलीकरण किया है, उसका संयोजन इस चित्र को सुंदर बनाता है। वह चीनी और जापानी शैली से प्रभावित थे। राधा को इस चित्र में इतना मनमोहक चित्रित किया गया है, जैसे संगीतात्मक कविता की पंक्ति हो। अन्य और भी ऐसे चित्र हैं जो काव्यात्मक— भावपूर्ण और संगीतमय गुणों से युक्त हैं, उदाहरणार्थ उदास राधिका, उमर खय्याम, स्वप्न, हिरामन तोता, वृक्ष के नीचे महिला, संगीतकार महिला, एक कब्र के पीछे आदमी एवं महिला दीपक जलाती हुई आदि।

© NCERT not to be republished

सिटी इन द नाइट

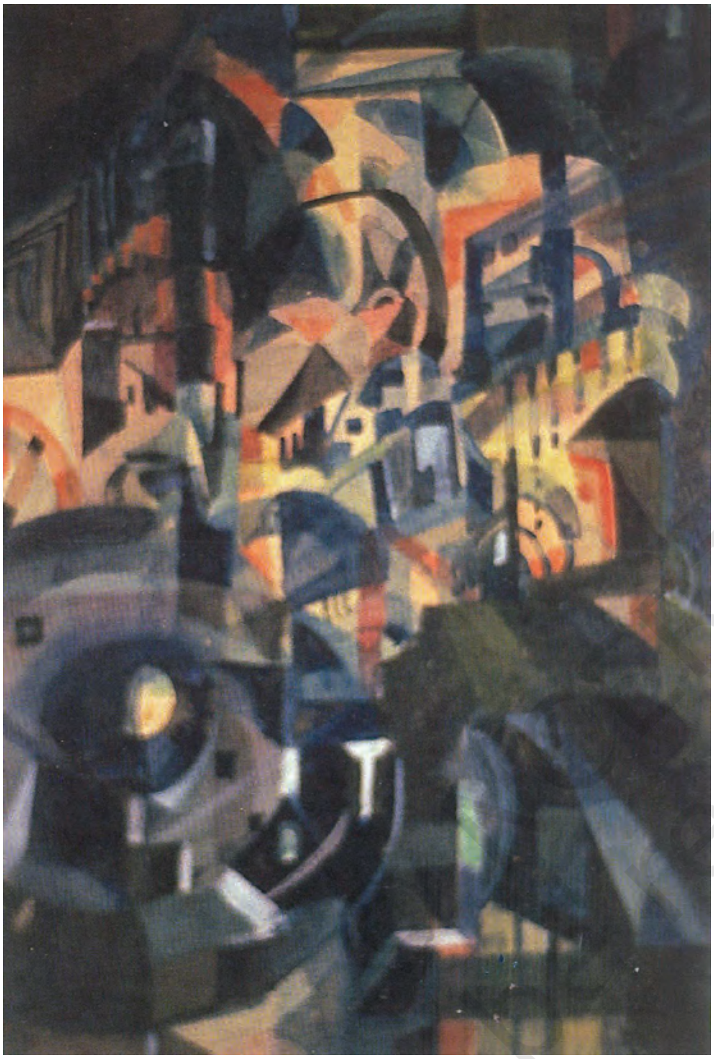

यह जलरंग चित्र गगनेंद्रनाथ टैगोर द्वारा (1869 से 1938) द्वारा 1922 में चित्रित किया गया था। उनकी घनवाद शैली को देखकर यह निस्संदेह कहा जा सकता है कि वह पहले ऐसे भारतीय कलाकार थे जिन्होंने भारतीय कला के परिदृश्य को ही बदलकर रख दिया था। उन्होंने अपने चित्रों में आंतरिक भाव के उथल-पुथल को ज्यामितीय रूप में अंकित किया जो विश्लेषणात्मक घनवाद शैली के नाम से जाना जाता है, जिसमें मानव आकृति हो या रूपरेखा सभी को ज्यामितीय घनवाद में बनाया गया है। उन्होंने अपने काल्पनिक कला जगत को कई दृष्टिकोण से समझकर चित्रित किया, जैसे— द्वारका (कृष्ण का काल्पनिक आवास) या स्वर्णपुरी। शहर और पर्वत के चित्रांकन में हीरे के समान चमकदार प्रकाश और प्रिज़्मीय रंगों का परस्पर समायोजन है।

वे टेढ़ी-मेढ़ी आकृतियों से एक घनात्मक भाव उत्पन्न करने में सक्षम रहे। उनके चित्रों की रहस्यमयी कृत्रिम रोशनी तथा रंगमंच की विशेषताओं से यह स्पष्ट है कि उन्होंने रवींद्रनाथ टैगोर के नाटक में रुचि लेने के साथ-साथ उसमें भागीदारी भी की। चित्रकार गगनेंद्रनाथ टैगोर ने अपने चित्रों में रंगमंच की सारी वस्तुओं की सजावट, स्क्रीन का विभाजन, कृत्रिम प्रकाश आदि के संदर्भ लिए हैं। अंतहीन गलियारे, खंभे, हॉल, आधे खुले दरवाज़े, पर्दा, रोशनी वाली खिड़कियाँ, सीढ़ियाँ और दीवारें, एक जादू भरी दुनिया का आभास कराते हैं।

राम वैंक्विशिंग द प्राइड ऑफ़ द ओशन

यह चित्र राजा रवि वर्मा द्वारा पौराणिक विषय (पौराणिक कहानियाँ) पर केंद्रित है। वह भारत के पहले कलाकार हैं, जिन्होने तैल रंग और लिथोग्राफ़ी तकनीक का प्रयोग करके पौराणिक विषयों के चित्र बनाए। यह चित्र एक महाकाव्य या शास्त्रीय पाठ के एक ऐतिहासिक क्षण पर आधारित है जिसमें नाटकीय प्रभाव उत्पन्न किया गया है। इस चित्र में कलाकार ने भावनात्मक चित्रण किया है। यह दृश्य *बाल्मीकि रामायण* से लिया गया है जहाँ राम अपनी सेना के साथ समुद्र को पार करना चाहते हैं। इसके लिए वह समुद्र देव, वरुण से प्रार्थना करते हैं लेकिन जब समुद्र देव ने कोई उत्तर नहीं दिया तब क्रोधित होकर राम ने वरुण देव को मारने के लिए अपना धनुष और बाण उठा लिया। तुरंत, वरुण देव प्रकट हुए और राम को शांत किया। इस चित्र में चित्रित कथानक अगले चित्रों के लिए उद्‌गार है। इस शृंखला के प्रत्येक चित्र अगले चित्र की पृष्ठभूमि है जिनमें न केवल राम एवं सीता अपितु संपूर्ण महाकाव्य के प्रमुख विषय शामिल हैं। राजा रवि वर्मा के अन्य प्रमुख चित्रों में अहिल्या की मुक्ति, राम का धनुष तोड़ना, सीता के विवाह से पहले, राम, सीता और लक्ष्मण सरयु को पार करते हुए, सीता हरण और जटायु, अशोक वाटिका में सीता, राम का तिलक आदि शामिल हैं।

© NCERT not to be republished

वुमन विद चाइल्ड

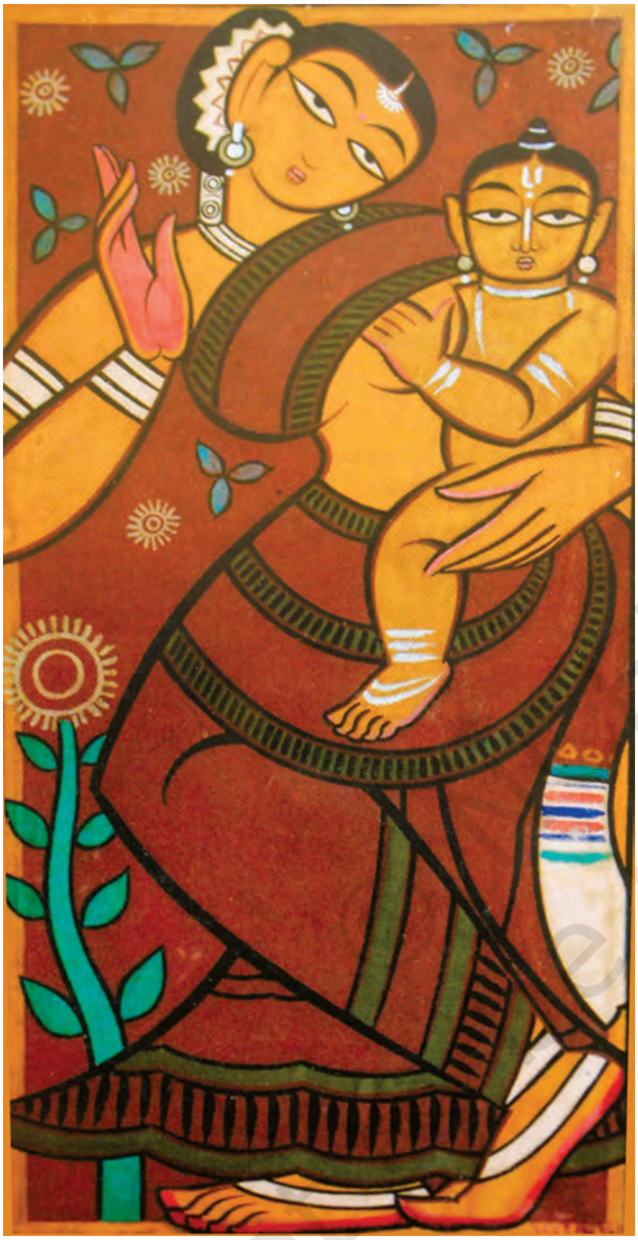

यह चित्र जामिनी रॉय (1887–1972) द्वारा 1940 में गॉश तकनीक में बनाया गया है। लोककला को भारतीय आधुनिक कला में एक अलग पहचान देने की वजह से जामिनी रॉय को लोककला के पुर्नजागरण का पिता कहा जाता है। 1920 के दशक के मध्य में उन्होंने बंगाल के ग्रामीण इलाकों में घूमकर वहाँ के लोक कलाकारों से उनकी कला सीखी। उन्होंने अपने चित्र 'मदर एंड चाइल्ड' में बहुत ही साधारण रंग द्वारा गतिपूर्ण रेखाओं का प्रयोग किया है जो उनकी तूलिका के अभ्यास के साथ उनके साधारण भावनात्मक व्यक्तित्व को भी स्पष्ट करता है। उन्होंने चित्र में धुँधला पीला और ईंट जैसे लाल रंग का प्रयोग पृष्ठभूमि में किया है जो उनके गाँव बाकुँरा मृण्य मूर्तियों का गेरू रंग था। इस द्वि-आयामी चित्र और उसे बड़े ही सरल ढंग से कपड़े पर बनाना उनकी स्वयं की खोज थी। रॉय ने मात्र लयात्मकता, अलकंरण की स्पष्टता और चित्रों की संगीतमयता को दिखाया। पर चित्र बनाने की कला में पांरगत होने के लिए उन्होंने पहले कई एकरंगीय चित्र बनाए और तब जाकर उन्होंने टेम्परा पद्धति में प्रारंभिक सात रंगों का प्रयोग किया। उन्होंने सभी रंगों को जैविक सामग्री से बनाया, जैसे— पत्थर के चूर्ण से सलेटी रंग, हल्दी से पीला, पारा पाउडर से सफ़ेद रंग, जलोढ़ मिट्टी से धुँधला पीला, नील से नीला और दूधिया आदि। ये सभी उन्हें आसानी से अपने आसपास गाँव में ही मिल गए, जिन्हें पत्थर की धूल, मिट्टी, नील अथवा खड़िया से बनाया। रॉय ने अपने कैनवास घर पर ही बनाए जिसमें चित्र बनाने के लिए सबसे पहले काले एवं गाढ़े रंगों का प्रयोग कर रेखाचित्र बनाया। जामिनी रॉय ने ग्रामीण विचारधारा के माध्यम से उपनिवेशवाद का विरोध किया एवं स्थानीय कला को गौण बनाया।

जर्नीस एंड

जलरंग से बने इस चित्र का चित्रण अवनीन्द्रनाथ टैगोर (1871–1951) द्वारा 1913 में किया गया था। भारत में राष्ट्रवादी और आधुनिक कला के पिता के रूप में अवनीन्द्रनाथ टैगोर को देखा जाता है। उन्होंने भारतीय और प्राच्य परंपराओं के कुछ पहलुओं को पुनर्जीवित किया, विशेष रूप से विषय, शैली और तकनीक के रूप में वॉश चित्रण का आविष्कार किया। वॉश चित्रण तकनीक एक कोमल, धुँधली और प्रभाववादी परिदृश्य उत्पन्न करती है। धुलाई के कारण चित्रों में धुँधला और वायुमंडलीय प्रभाव उत्पन्न होता है जिसका उपयोग जीवन के अंत को सांकेतिक रूप में दर्शाने के लिए किया जाता है।

इस चित्र में, एक थक कर बैठते हुए ऊँट को सूर्यास्त के लाल रंग की पृष्ठभूमि पर यात्रा के अंत को संध्या से सांकेतिक रूप से दर्शाया गया है। अवनीन्द्रनाथ ने एक तरफ अनुभव और कथन को प्रतीकात्मक सौंदर्य से प्रकट करने की कोशिश की है, वहीं दूसरी तरफ सुंदरता और साहित्य का गठजोड़ करने की चेष्टा की है। ऊँट की शारीरिक बनावट को सटीक रेखाओं और कोमल रंगों के द्वारा उकेरा गया है और उसकी संवेदी संरचना चित्र के अर्थ को स्पष्ट करती है। अवनीन्द्रनाथ द्वारा अन्य चित्र — द फ़ॉरेस्ट, कमिंग ऑफ़ नाइट, माउंटेन ट्रैवलर, क्वीन ऑफ़ द फ़ॉरेस्ट और अरेबियन नाइट्स पर आधारित 45 चित्रों की एक शृंखला हैं।

© NCERT not to be republished

आधुनिक भारतीय कला

7

भारतीय कला में आधुनिकता का परिचय

अंग्रेज़ों के द्वारा ललित कला को यूरोपीय रूप में देखा गया। उन्होंने अनुभव किया कि भारतीयों के पास ललित कलाओं के सृजन और आस्वादन के लिए प्रशिक्षण और ऐंद्रिय संवेदना नहीं है। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य और उत्तरार्ध में भारत के प्रमुख शहरों में, अनेक कला विद्यालयों की स्थापना की गई, जैसे— लाहौर, कलकत्ता (अब कोलकाता), बॉम्बे (अब मुंबई) और मद्रास (अब चेन्नई)। इन कला विद्यालयों में अकादमिक व प्रकृतिवादी कला को बढ़ावा दिया गया जिसने विक्टोरियन प्रवृत्ति को प्रतिबिंबित किया। यहाँ तक कि भारतीय शिल्प को जो भी समर्थन मिला, वह यूरोपीय अभिरुचि और इसके बाज़ार द्वारा की गई माँगों पर आधारित था।

12148CH07

गगनेंद्रनाथ टैगोर, घनचित्रण शैली का शहर, 1925, विक्टोरिया मेमोरियल हॉल, कोलकाता, भारत

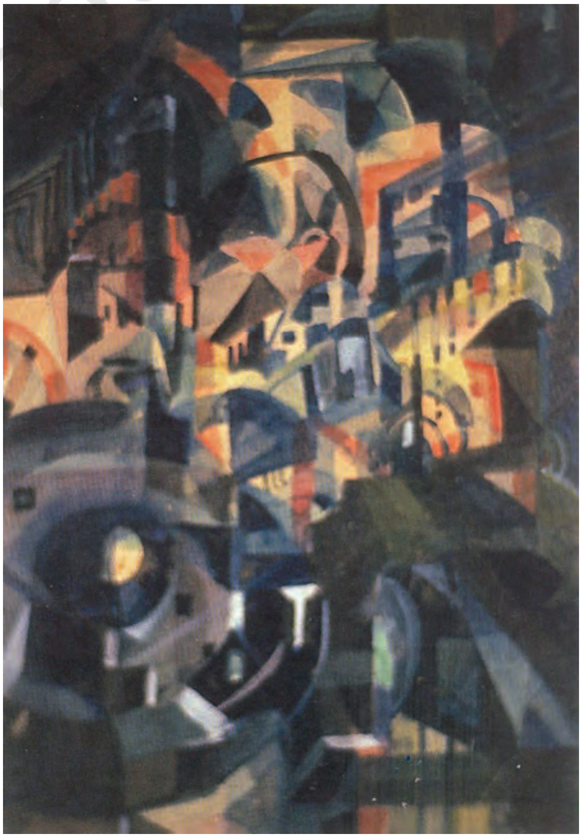

जैसा कि पिछले अध्याय में उल्लेख किया गया है कि औपनिवेशिक पक्षपात के विपरीत राष्ट्रवादी कला का उदय हुआ। 'बंगाल स्कूल ऑफ़ आर्ट' का विकास अवनीन्द्रनाथ टैगोर और ई.बी. हैवेल ने किया। भारत का प्रथम राष्ट्रवादी कला विद्यालय, 'कला भवन', 1919 में शांतिनिकेतन में नव स्थापित विश्वभारती विश्वविद्यालय में स्थापित किया गया जिसकी परिकल्पना कवि 'रवींद्रनाथ टैगोर' ने की थी। इसने बंगाल शैली की उन्नत दृष्टि को बनाए रखा, लेकिन भारतीय समाज में कला को सार्थक बनाने में स्वयं के पथ का अनुसरण किया। यह वह समय था जब पूरी दुनिया प्रथम विश्व युद्ध के कारण, गहन राजनीतिक उथल-पुथल की अवस्था में थी। इसके अलावा कलकत्ता की यात्रा करने वाली प्रसिद्ध 'बाहौस कला प्रदर्शनी', जिसकी पिछले अध्याय में चर्चा की गई थी और उस समय की कला पत्रिकाओं के कारण आधुनिक यूरोपीय कला ने भारतीय कलाकारों को प्रभावित किया। इस तरह गगनेंद्रनाथ और कवि-चित्रकार रवींद्रनाथ टैगोर परिवार के कलाकारों ने घनवाद और अभिव्यंजनावाद जैसी अंतर्राष्ट्रीय कला के बारे में जाना,

© NCERT not to be republished

रवींद्रनाथ टैगोर, डूडल,1920, विश्वभारती विश्वविद्यालय, शांतिनिकेतन, पश्चिम बंगाल, भारत

इन्होंने अकादमिक यथार्थवाद का त्याग कर अमूर्त के साथ प्रयोग किए। उनका मत था कि, 'कला को दुनिया की नकल करने की आवश्यकता नहीं है, बल्कि उसे रूपों, रेखाओं और रंगों के प्रयोग से अपनी स्वयं की दुनिया का सृजन करना चाहिए।'

गगनेंद्रनाथ टैगोर ने घनवादी तत्वों को समाहित करके अपनी स्वयं की एक विशिष्ट शैली का निर्माण किया। उन्होंने अपने रहस्यमयी विशाल कक्षों और कमरों के निर्माण में ऊर्ध्वाधर, क्षैतिज और तिरछी रेखाओं का प्रयोग किया, जो प्रसिद्ध कलाकार 'पाब्लो पिकासो' के घनवादी शैली से काफी भिन्न है। पिकासो ने ज्यामितीय आकृतियों का प्रयोग करके इस शैली का आविष्कार किया था।

रवींद्रनाथ टैगोर अपने जीवन में काफी देर से दृश्य कला की ओर अग्रसर हुए। वे अपनी कविताओं को लिखते समय, अकसर डूडल (बिना सोचे-समझे किया गया रेखांकन) बनाते थे। इस प्रकार उन्होंने सुलेख की एक विशेष शैली विकसित कर ली थी। इनमें से कुछ मानव चेहरे और कुछ भू-दृश्य उनकी कविताओं के साथ मनोरम रूप में दिखलाई पड़ते थे। उनका पैलेट काले, पीले, गेरू, लाल और भूरे रंगों तक ही सीमित था। हालाँकि रवींद्रनाथ ने अपना एक छोटा-सा दृश्य संसार बनाया था, जो बंगाल स्कूल की सुंदर और नाज़ुक शैली से पूरी तरह से अलग था। जो अकसर अजंता भित्ति चित्रों के साथ मुगल और पहाड़ी लघुचित्रों से प्रभावित था।

नंदलाल बोस सन् 1921–22 में ललित कला संस्थान, कला भवन में शामिल हुए। अवनीन्द्रनाथ टैगोर के प्रशिक्षण ने उन्हें कला में राष्ट्रीयता से परिचित कराया, लेकिन वे अपने छात्रों और अन्य शिक्षकों के नए कलात्मक प्रयोगों में बाधक नहीं बने, बल्कि उन्हें हर तरह से प्रोत्साहित किया।

बिनोद बिहारी मुखर्जी और रामकिंकर बैज, नंदलाल बोस के सबसे रचनात्मक छात्रों में से थे, जिनके विचारों ने दुनिया को समझने में हमारी सहायता की। उन्होंने स्केचिंग और चित्र बनाने की अपनी स्वयं की अनूठी शैली विकसित की, जिसमें उन्होंने न केवल अपने आसपास के परिवेश की वनस्पतियों और जीव-जंतुओं को ही नहीं, बल्कि वहाँ रहने वाले लोगों का भी सफलतापूर्वक चित्रण किया। शांतिनिकेतन के बाहरी क्षेत्रों में संथाल जनजातियों की एक बड़ी आबादी थी और ये कलाकार अकसर उन्हें चित्रित किया करते थे तथा उनकी मूर्तियाँ भी बनाते थे। इसके अतिरिक्त, चित्रण के लिए साहित्यिक विषयों में भी उनकी रुचि थी।

रामायण और *महाभारत* जैसे प्रसिद्ध महाकाव्यों पर आधारित चित्र बनाने के अतिरिक्त, बिनोद बिहारी मुखर्जी को मध्यकालीन संतों के जीवन ने भी आकर्षित किया। शांतिनिकेतन में हिंदी भवन की दीवारों पर, उन्होंने 'मध्यकालीन संत' नामक एक भित्ति चित्र बनाया, जिसमें उन्होंने तुलसीदास, कबीर और अन्य लोगों के जीवन के माध्यम से मध्यकालीन भारत के इतिहास को चित्रित करने का प्रयास किया है। इसमें उनकी मानवीय शिक्षाओं पर ध्यान केंद्रित किया गया है।

जैमिनी रॉय, ब्लैक हॉर्स (काला घोड़ा), 1940, राष्ट्रीय आधुनिक कला संग्रहालय, नयी दिल्ली, भारत

रामकिंकर बैज, एक ऐसे कलाकार थे, जिन्हें प्रकृति से विशेष लगाव था। उनकी मूर्तिकला और चित्रकला में उनके दैनिक जीवन के अनुभवों को स्पष्टता से देखा जा सकता है। उनकी लगभग सभी मूर्तियाँ और चित्र उनके परिवेश के अनुभव पर आधारित हैं। उदाहरण के लिए, कला भवन परिसर के खुले प्रांगण में निर्मित मूर्ति 'संथाल परिवार' जिसमें एक संथाल परिवार की दैनिक गतिविधियों को उनके वास्तविक आकार से बड़ा स्मारकीय रूप दिया गया है। इसके निर्माण के लिए आधुनिक सामग्रियों का प्रयोग किया गया। धातु के ढाँचे (armature) के ऊपर सीमेंट व गिट्टी के मिश्रण का आवश्यकतानुसार प्रयोग करके इसका निर्माण किया गया है। उनकी शैली डी.पी. रॉय चौधरी जैसे पूर्ववर्ती मूर्तिकार के विपरीत थी, जिन्होंने श्रमिकों के उत्तम 'श्रम की विजय' (ट्राइम्फ़ ऑफ़ लेबर) के निर्माण के लिए अकादमिक यथार्थवाद का प्रयोग किया था।

यदि ग्रामीण समुदाय, बिनोद बिहारी मुखर्जी और रामकिंकर के लिए महत्वपूर्ण था, तो जैमिनी रॉय ने भी इसे अपनी कला में प्रासंगिक बनाया। पिछले अध्याय में रॉय पर एक कलाकार के रूप में संक्षिप्त चर्चा की गई थी, जिन्होंने कलकत्ता के सरकारी 'स्कूल ऑफ़ आर्ट' में प्राप्त स्वयं के प्रशिक्षण को अस्वीकार कर दिया था। अवनीन्द्रनाथ टैगोर के छात्र होने के कारण, उन्होंने अकादमिक कला की निरर्थकता का अनुभव किया। उन्होंने देखा कि बंगाल की ग्रामीण लोक कलाओं में ऐसी बहुत कुछ समानता थी, जिसे पिकासो और पॉल ली जैसे आधुनिक यूरोपीय चित्रकार चित्रित किया करते थे। आखिरकार पिकासो, अफ्रीकी मास्क में पाए गए स्पष्ट रूपों से प्रेरणा लेकर, घनवाद में पहुँचे थे। रॉय ने भी सरल और शुद्ध रंगों का प्रयोग किया और गाँव के कलाकार की तरह उन्होंने वनस्पतियों और खनिजों से अपने रंग बनाए। उनके चित्रों की उनके परिवार के अन्य सदस्यों द्वारा सरलतापूर्वक प्रतिलिपियाँ तैयार की जाती थीं। यह प्रथा गाँव के कारीगरों में प्रचलित थी। गाँव के

कलाकारों से भिन्न उनकी कला में जो अंतर था, वह यह था कि रॉय अपने चित्रों पर हस्ताक्षर किया करते थे। उनकी शैली की पहचान आज एक विशिष्ट व्यक्तिगत शैली के रूप में होती है, जो कला विद्यालयों के शैक्षणिक प्रकृतिवाद व रवि वर्मा के भारतीय यथार्थवाद के साथ-साथ बंगाल स्कूल के कुछ कलाकारों द्वारा प्रचलित विशिष्ट 'कोमल शैली' से अलग है।

अमृता शेरगिल (1913–41), जो अर्द्ध हंगेरियन और अर्द्ध भारतीय हैं, वे एक अद्वितीय महिला कलाकार के रूप में उभरती हैं। उन्होंने 1930 के दशक में आधुनिक भारतीय कला के विकास में विशिष्ट योगदान दिया। दूसरे कलाकारों के विपरीत, उन्होंने पेरिस में प्रशिक्षण प्राप्त किया था। अतः उन्हें प्रभाववाद और उत्तर प्रभाववाद जैसे आधुनिक यूरोपीय कला रुझानों का प्रत्यक्ष अनुभव था। यह तय करने के बाद कि वे भारत को अपना कार्य क्षेत्र बनाएँगी, उन्होंने भारतीय विषयों और आकृतियों के साथ अपनी कला को विकसित करने के लिए काम किया। अमृता शेरगिल ने आधुनिक यूरोपीय कला के साथ भारतीय कला की लघु और भित्ति चित्र परंपराओं को आत्मसात किया। युवावस्था में ही उनकी मृत्यु हो गई, लेकिन वह अपने पीछे उल्लेखनीय कलाकृतियों की विरासत छोड़ गईं, जो उनकी प्रायोगिक भावना को समझने के लिए महत्वपूर्ण है। साथ ही जो अगली पीढ़ी के भारतीय आधुनिकतावादियों पर अपना विशेष प्रभाव छोड़ती है।

भारत में आधुनिक विचारधारा और राजनीतिक कला

प्रोदोष दास गुप्ता,
ट्विंस ब्रोंज (जुड़वाँ कांस्य) 1973,
राष्ट्रीय आधुनिक कला संग्रहालय,
नयी दिल्ली, भारत

शेरगिल की मृत्यु के उपरांत भी भारत ब्रिटिश शासन के अधीन था, जिसे द्वितीय विश्व युद्ध जैसी वैश्विक घटनाओं ने गहराई से प्रभावित किया। अप्रत्यक्ष घटनाओं में से एक बंगाल में अकाल का प्रकोप था, जिसने इस क्षेत्र को उजाड़कर रख दिया। ग्रामीणों को इस अकाल ने शहरों में बड़े स्तर पर प्रवास के लिए मजबूर किया।

इस मानवीय संकट ने कई कलाकारों को समाज में उनकी भूमिका पर विचार करने के लिए मजबूर किया। मूर्तिकार प्रोदोष दास गुप्ता के नेतृत्व में, 1943 में कुछ युवा कलाकारों ने कलकत्ता समूह का गठन किया, जिसमें निरोद मज़ूमदार, परितोष सेन, गोपाल घोष और रथिन मोइत्रा शामिल थे। समूह एक ऐसी कला में विश्वास करता था जो चरित्र में सार्वभौमिक थी और पुराने मूल्यों से मुक्त थी। उन्हें बंगाल स्कूल ऑफ़ आर्ट पसंद नहीं थी, क्योंकि यह शैली बहुत भावुक थी और अतीत में भी अधिक रुचि रखती थी; वे चाहते थे कि उनके चित्र और मूर्तियाँ अपने समय के साक्षी हों।

उन्होंने विवरणों को त्यागकर अपनी दृश्य अभिव्यक्ति को सरल बनाना शुरू कर दिया। इस तरह के प्रयास से उन्होंने कला के तत्वों, सामग्री, सतह,

रूपों, रंगों, छाया और पोत (बनावट) आदि पर अधिक बल दिया। दक्षिण भारत के मूर्तिकार, पी.वी. जानकीराम (गणेश) से उनकी तुलना की जा सकती है, जिन्होंने रचनात्मक तरीके से धातु की चादरों पर काम किया है।

गाँवों और शहरों में अपने आसपास की गरीबी और लोगों की दुर्दशा को देखकर, कलकत्ता में कई युवा कलाकार समाजवाद और विशेष रूप से मार्क्सवाद की ओर आकर्षित हुए। इस आधुनिक दर्शन को पश्चिम में उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में कार्ल मार्क्स द्वारा उल्लेखित किया गया था। इस दर्शन ने समाज में व्याप्त वर्ग अंतर के बारे में महत्वपूर्ण प्रश्न पूछे थे। इस अवधारणा ने कलाकारों को बहुत प्रभावित किया। वे चाहते थे कि उनकी कला, इन सामाजिक समस्याओं के बारे में चर्चा करे। चित्तप्रसाद और सोमनाथ होरे जैसे भारत के दो सबसे प्रमुख राजनीतिक कलाकारों ने इन सामाजिक सरोकारों को व्यक्त करने के लिए एक मज़बूत माध्यम के रूप में 'प्रिंटमेकिंग' को अपनाया। 'प्रिंटमेकिंग' के द्वारा एक कलाकृति की कई प्रतिकृतियों का निर्माण करना आसान हो जाता है, साथ ही इस तरह वह अधिक लोगों तक पहुँच भी जाती है। चित्तप्रसाद की नक्काशी (एचिंग), लीनोकट (मुद्रण) और शिलामुद्रण में गरीबों की विकट परिस्थितियों को दिखाया गया है। इसमें आश्चर्य नहीं कि उन्हें भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी ने बंगाल अकाल से प्रभावित गाँवों की यात्रा करने और स्केच बनाने के लिए कहा, जोकि बाद में *हंग्री बंगाल* के नाम से पैम्फ़लेट के रूप में प्रकाशित हुए।

चित्तप्रसाद, हंग्री बंगाल (भूखा बंगाल), 1943, दिल्ली आर्ट गैलरी, नयी दिल्ली, भारत

एम. एफ. हुसैन, किसान परिवार, 1940, राष्ट्रीय आधुनिक कला संग्रहालय, नयी दिल्ली, भारत

प्रोग्रेसिव आर्टिस्ट्स ग्रुप ऑफ़ बॉम्बे और बहुमुखी भारतीय कला

राजनीतिक एवं कलात्मक स्वतंत्रता की अभिलाषा— जल्द ही उन युवा कलाकारों के बीच व्यापक रूप से फैल गई, जिन्होंने ब्रिटिश राज से भारतीय स्वतंत्रता की प्राप्ति देखी। बॉम्बे में, कलाकारों के एक अन्य समूह ने 1946 में 'द प्रोग्रेसिव्स' नामक एक समूह का गठन किया। फ्रांसिस न्यूटन सूज़ा इसके मुख्य नेता थे, जिसमें एम.एफ़. हुसैन, के.एच. आरा, एस.ए. बाकरे, एच.ए. गाडे और एस.एच. रज़ा शामिल थे। सूज़ा, कला स्कूलों में व्याप्त परंपराओं पर प्रश्न उठाना चाहते थे। उनके लिए आधुनिक कला

एक नई स्वतंत्रता की ओर अग्रसर थी, जो सौंदर्य और नैतिकता की पारंपरिक भावना को चुनौती दे सके। हालाँकि, उनके प्रयोगात्मक कार्य मुख्य रूप से महिलाओं पर केंद्रित थे, जिन्हें उन्होंने नग्न रूप में चित्रित किया। उनके शारीरिक अनुपात को बढ़ा-चढ़ाकर बनाया और सौंदर्य की मानक धारणाओं को तोड़ दिया।

दूसरी ओर, एम.एफ़. हुसैन चित्रकला की आधुनिक शैली को भारतीय संदर्भ में समझने योग्य बनाना चाहते थे। उदाहरण के लिए, उन्होंने पश्चिमी अभिव्यंजनवादी तूलिका घात (ब्रश स्ट्रोक) का प्रयोग चमकदार भारतीय रंगों के साथ किया। उन्हें न केवल भारतीय पौराणिक कथाओं और धार्मिक स्रोतों ने, बल्कि लघुचित्रों, ग्राम-शिल्प और यहाँ तक कि लोक खिलौनों की शैली ने भी आकर्षित किया।

भारतीय विषयों के साथ चित्रकला की आधुनिक शैली के सफलतापूर्वक संयोजन के परिणामस्वरूप, हुसैन की कला अंततः विश्व की आधुनिक कला में आधुनिक भारतीय कला का प्रतिनिधित्व करने लगी। 'मदर टेरेसा' नामक चित्र यह समझने के लिए एक अच्छा उदाहरण है कि कैसे उन्होंने आधुनिक कला में उन विषयों को चित्रित किया, जो भारत के साथ-साथ अंतर्राष्ट्रीय दर्शक के लिए महत्वपूर्ण हैं।

अमूर्तन — एक नई अवधारणा

यदि देखा जाए तो हुसैन काफ़ी हद तक एक आकृतिमूलक कलाकार बने रहे, जबकि एस.एच. रज़ा अमूर्तन (एब्सट्रैक्शन) की दिशा में अग्रसर हुए। कोई आश्चर्य नहीं है कि यह 'भू-दृश्य' (लैंडस्कैप) इस कलाकार का पसंदीदा विषय था। इनके रंग चटक से लेकर कोमल और एकवर्णी (मोनोक्रोम) थे। यदि हुसैन ने भारतीय विषयों को चित्रित करने के लिए विशिष्ट आधुनिक आकृतियों का प्रयोग किया, तो रज़ा ने उसे अमूर्तन के माध्यम से प्रस्तुत किया। उनके कुछ चित्र पुराने मंडल और यंत्र के डिज़ाइनों से प्रभावित हैं यहाँ तक कि उन्होंने भारतीय दर्शन की एकात्मकता के प्रतीक 'बिन्दु' का प्रयोग किया है। बाद में, गायतोंडे ने भी अमूर्तन का अनुसरण किया, जबकि के.के. हेब्बार, एस. चावड़ा, अकबर पदमसी, तैयब मेहता, कृष्ण खन्ना, अमूर्त और आकृतिमूलक कला के बीच ही घूमते रहे।

एस.एच. रज़ा, माँ, 1972, बॉम्बे, भारत

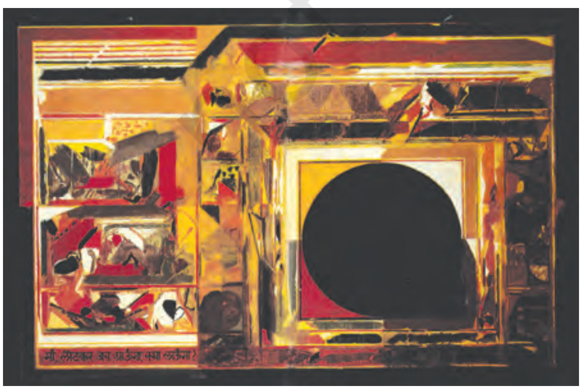

कई मूर्तिकारों जैसे पिलो पोचखानवाला और कृष्ण रेड्डी जैसे 'प्रिंटमेकर्स' के लिए अमूर्तन महत्वपूर्ण था। उनके लिए नई सामग्री का उपयोग उतना ही महत्वपूर्ण था, जितना कि नए रूपाकार का। चित्रकला, छापाकला या मूर्तिकला में, 1960 और 1970 के दशक में कई कलाकारों के लिए अमूर्तन विशेष

लोकप्रिय था। दक्षिण भारत में, के.सी.एस. पणिकर ने मद्रास के पास एक कलाकार गाँव 'चोलमंडलम' की स्थापना की थी। वह अमूर्तन में अग्रणी थे। वास्तव में, तमिल और संस्कृत लिपियों, फ़र्श की सजावट और ग्रामीण शिल्प से कलात्मक रूपांकनों को दिखाते हुए उन्होंने बताया कि अमूर्त का भारत में एक लंबा इतिहास है।

हालाँकि, 1970 के दशक के उत्तरार्ध तक अंतर्राष्ट्रीयवाद (जिसमें एक कलाकार स्वतंत्र रूप से पश्चिमी आधुनिक प्रवृत्तियों जैसे कि घनवाद, अभिव्यंजनावाद, अमूर्तन आदि) और स्वदेशीवाद (जिसमें कलाकारों ने देशी कलाओं की ओर रुख किया था) के बीच तनाव बढ़ गया था। अमरनाथ सहगल जैसे मूर्तिकारों ने अमूर्त और मूर्त के बीच संतुलन पर आघात किया और तार के उपयोग से 'क्राईज़ अनहर्ड' की तरह ही शानदार मूर्ति बनाईं। मृणालिनी मुखर्जी की रचनाएँ, अमूर्तन की ओर अधिक झुकी हुई दिखाई देती हैं, उन्होंने सुतली के रेशों जैसे अभिनव माध्यम से 'वनश्री' नामक कृति का निर्माण किया।

जी. आर. संतोष, शीर्षकहीन, 1970, राष्ट्रीय आधुनिक कला संग्रहालय, नयी दिल्ली, भारत

कई भारतीय कलाकार और आलोचक पश्चिम से आधुनिक कला की नकल के बारे में चिंतित हुए और उन्होंने स्वयं की कला में एक भारतीय पहचान स्थापित करने की आवश्यकता महसूस की। 1960 के दशक में, दिल्ली में बीरेन डे और जी.आर. संतोष और के.सी.एस. पणिकर ने मद्रास में, इस दिशा में कदम बढ़ाए। वे एक अद्वितीय भारतीय अमूर्त कला बनाने के लिए अतीत और स्थानीय कलात्मक परंपराओं की ओर अग्रसर हुए।

के.सी.एस. पणिकर, द डॉग (कुत्ता) 1973, राष्ट्रीय आधुनिक कला संग्रहालय, नयी दिल्ली, भारत

यह शैली पहले पश्चिम और बाद में भारत में सफल हुई और इसे 'नव-तांत्रिक' कला के रूप में जाना जाने लगा, क्योंकि इसमें योग व ध्यान यंत्रों की तरह ज्यामितीय आकृतियों का प्रयोग किया गया है। पश्चिम में 'हिप्पी आंदोलन' के उत्कर्ष के समय यह बनाई गई। इस तरह की कलाकृतियों को एक तैयार बाज़ार मिला। साथ ही संग्रहालयों और संग्रहकर्ताओं द्वारा भी समान रूप से इनका संग्रह किया गया। इस शैली को भारतीय अमूर्तन के रूप में देखा जाने लगा। बीरेन डे ने अपनी रचनाओं में रंगों और पैटर्नों के मनोहारी प्रयोगों को जन्म दिया। जी.आर. संतोष ने पुरुष और महिला ऊर्जा के लौकिक संयोग का चित्रण

© NCERT not to be republished

किया, जो हमें तांत्रिक दर्शन के पुरुष और प्रकति का स्मरण दिलाते हैं। दूसरी ओर, के.सी.एस. पणिकर ने अपने क्षेत्र में प्रचलित आरेखों, लिपियों और चित्रलेखों का उपयोग किया और उनसे अपनी शैली विकसित की, जो कि आधुनिक और विशिष्ट रूप से भारतीय, दोनों थी।

इसी अर्थ में, संकलनवाद (electicism) जिसमें कई स्रोतों से कलाकारों ने विचारों को संग्रहित किया, अनेक भारतीय आधुनिकतावादियों की एक महत्वपूर्ण विशेषता बन गई। इनमें रामकुमार, सतीश गुजराल, ए. रामचंद्रन और मीरा मुखर्जी जैसे कुछ नाम उल्लेखनीय हैं।

बॉम्बे प्रोग्रेसिव आर्टिस्ट्स ग्रुप के समय से, कलाकारों ने अपने स्वयं के घोषणापत्र या लेख लिखना शुरू किया, जिसमें उन्होंने अपनी कला के मुख्य उद्देश्यों को घोषित किया और यह भी बताया कि किस तरह से वह अन्य से भिन्न हैं। सन् 1963 में, जे. स्वामीनाथन के नेतृत्व में एक अन्य समूह गठित हुआ, जिसका नाम 'समूह 1890' था। स्वामीनाथन ने एक घोषणापत्र भी प्रकाशित किया, जिसमें कलाकारों ने किसी भी विचारधारा से मुक्त होने का दावा किया। किसी भी पूर्व निर्धारित योजना के बजाय, उन्होंने चित्र में प्रयोग की जाने वाली सामग्रियों को एक नये रूप में अपनाया। उन्होंने एक नई कलात्मक भाषा के रूप में अपने चित्रों में अंकित खुरदुरी बनावट और सतह के महत्व के बारे में लिखा। इसमें गुलाम मोहम्मद शेख, ज्योति भट्ट, अंबादास, जेराम पटेल तथा मूर्तिकार राघव कनेरिया और हिम्मत शाह जैसे कलाकार सम्मिलित थे। यह एक अल्पकालिक आंदोलन था, लेकिन इसने अगली पीढ़ी के कलाकारों, विशेष रूप से मद्रास के पास चोलमंडलम स्कूल से जुड़े लोगों को प्रभावित किया।

आधुनिक भारतीय कला का विश्लेषण (ट्रेसिंग)

भारतीय आधुनिक कला में भले ही कुछ विचार पश्चिम से लिए गए हों, लेकिन वह उससे काफ़ी भिन्न है। इस तथ्य को अस्वीकृत करना असंभव है कि, एक कला आंदोलन के रूप में 'आधुनिकतावाद' भारत में तब आया जब यह एक ब्रिटिश उपनिवेश था। यह तब और स्पष्ट होता है जब हम गगनेंद्रनाथ, अमृता शेरगिल और जैमिनी रॉय जैसे कलाकारों की ओर रुख करते हैं, जिन्हें 1930 के दशक की शुरुआत में 'आधुनिक' माना जाता था। पश्चिम में, विशेष रूप से यूरोप में, आधुनिक कला तब सामने आई, जब कला अकादमियों के शास्त्रीय यथार्थवाद को अस्वीकृत किया जाने लगा। इन आधुनिक कलाकारों ने स्वयं को 'आवाँ-गार्द' (avant-garde) परंपरा से आधुनिकता के परिवर्तित रूप में देखा।

© NCERT not to be republished

औद्योगिक क्रांति के बाद, तकनीक के अभूतपूर्व विकास के कारण, चर्चों और महलों को अलंकृत करने वाली पारंपरिक कला ने अपना अर्थ खो दिया। एडवर्ड माने, पॉल सूज़ा, क्लॉड मोने और अन्य प्रारंभिक आधुनिक फ्रांसीसी कलाकारों ने प्रमुख कला संस्थानों के बाहर काम करना प्रारंभ कर दिया। कैफे और रेस्तरां, कलाकारों, लेखकों, फ़िल्म निर्माताओं और कवियों के लिए महत्वपूर्ण स्थान बन गए, जहाँ वे मिलते और आधुनिक जीवन में कला की भूमिका के बारे में चर्चा करते थे। भारत में, एफ़.एन. सूज़ा और जे. स्वामीनाथन जैसे कलाकारों ने कला संस्थानों के खिलाफ़ विद्रोह किया और उन्होंने स्वयं को इन पश्चिमी कलाकारों के साथ संबद्ध किया। आधुनिक भारतीय कला की कहानी में एक बड़ा विवाद यह है कि इससे आधुनिकता और उपनिवेशवाद, दोनों निकटता से जुड़े थे। राष्ट्रवाद न केवल एक राजनीतिक आंदोलन था, बल्कि 1857 के विद्रोह के बाद उत्पन्न हुआ और इसने सांस्कृतिक राष्ट्रवाद को भी जन्म दिया। कला में स्वदेशी जैसे विचारों को उन्नीसवीं शताब्दी के अंत और बीसवीं शताब्दी के आरंभ में आनंद कुमारस्वामी जैसे कला इतिहासकारों ने बढ़ावा दिया। इसका अर्थ यह है कि हम भारतीय आधुनिकतावाद को पश्चिम की अंधी नकल के रूप में नहीं समझ सकते, बल्कि भारत में आधुनिक कलाकारों द्वारा चयन की अपनी एक सुविचारित प्रक्रिया थी।

हम पहले ही चर्चा कर चुके हैं कि कैसे उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में, कलकत्ता में अवनीन्द्रनाथ टैगोर के नेतृत्व में बंगाल स्कूल के उत्थान के लिए कला में राष्ट्रवाद का महत्व रहा है। इसके बाद कला भवन में शांतिनिकेतन में, उसने एक अलग रूप धारण किया। अवनीन्द्रनाथ टैगोर के शिष्यों, जैसे— नंदलाल बोस और असित हल्दार ने पिछली परंपराओं, जैसे— अजंता भित्ति चित्र, मुगल, राजस्थानी और पहाड़ी लघुचित्र आदि से प्रेरणा प्राप्त की।

हालाँकि, हम कह सकते हैं कि आधुनिक भारतीय कला में गगेंद्रनाथ टैगोर, रवींद्रनाथ टैगोर, जैमिनी रॉय, अमृता शेरगिल, रामकिंकर बैज और बिनोद बिहारी मुखर्जी जैसे कलाकारों को एक विशिष्ट दृष्टिकोण से स्थान प्राप्त है। आइए, एक त्वरित अवलोकन करें कि भारत में आधुनिक कला कैसे विकसित होती है।

आधुनिक भारतीय कला के बारे में एक रोचक तथ्य है कि चित्रकला और मूर्तिकला में विषय काफ़ी हद तक ग्रामीण भारत से लिए गए थे। 1940 और 1950 के दशक में बॉम्बे प्रोग्रेसिव और कलकत्ता समूह के कलाकारों के साथ भी यही स्थिति रही। भारतीय कलाकारों की कृतियों में शहर और शहरी जीवन शायद ही कभी दिखाई दिए। संभवतः असली भारत गाँवों में रहता है। 1940 और 1950 के दशक के भारतीय कलाकारों ने शायद ही कभी अपने तत्काल सांस्कृतिक परिवेश को देखा।

© NCERT not to be republished

नवीन कला आकृतियाँ और 1980 के दशक की आधुनिक कला

सन् 1970 के दशक से, कई कलाकारों ने आकृतियों और कहानियों की ओर बढ़ना शुरू किया, जिन्हें पहचानना आसान है। संभवतः यह 1971 के भारत-पाकिस्तान युद्ध और बांग्लादेश के जन्मोपरांत सामाजिक समस्याओं पर अपनी चिंताओं को व्यक्त करने का एक तरीका था। जबकि बड़ौदा में के.जी. सुब्रमण्यन, गुलाम मोहम्मद शेख और भूपेन खक्कर ने अपने चित्रों में कहानी को वर्णनात्मक रूप में चित्रित करना शुरू कर दिया, पश्चिम बंगाल में जोगन चौधरी, बिकाश भट्टाचार्जी, गणेश पाइन ने भी उन सामाजिक समस्याओं को चित्रित किया, जिन्होंने उन्हें विचलित किया।

पिछली पीढ़ियों के भारतीय कलाकारों की तरह, वे भी पुराने लघुचित्रों और प्रचलित कला से प्रभावित हुए, जैसे— कैलेंडर तथा लोककला ताकि लोकप्रिय कला रूपों द्वारा उन कहानियों को चित्रित कर सकें, जो ज़्यादा लोगों द्वारा समझी जा सकें।

मानव और जानवरों की आकृतियों का प्रयोग ज्योति भट्ट (देवी), लक्ष्मा गौड़ (मैन वूमन, ट्री), अनुपम सूद (ऑफ़ वॉल्स) जैसे छापाकारों की कृतियों में देखे जा सकते हैं। इनमें दुनिया में पुरुषों और महिलाओं के बीच के सामाजिक असमानता के संघर्ष को दिखाने का प्रयास किया गया है। अर्पिता सिंह, नलिनी मालानी, सुधीर पटवर्धन और ऐसे कई कलाकारों ने बड़े शहरों में रहने वाले लोगों के पलायन की ओर ध्यान आकर्षित किया। इनमें से कई आधुनिक कलाकारों ने इन शहरी समस्याओं को चित्रित किया और दुनिया को शोषितों की दृष्टि से देखने की कोशिश की।

सन् 1980 के दशक में, बड़ौदा स्कूल में एक महत्वपूर्ण मोड़ आया, जो 1950 के अंत में स्थापित हुआ था। कलाकारों की सोच में परिवर्तन आया और उन्होंने अपने आसपास के परिवेश में रुचि लेना आरंभ की। कई कलाकारों को लोकतंत्र में एक नागरिक के रूप में उनकी भूमिका के बारे में पता चला और इस दौरान घटित होने वाली सामाजिक एवं राजनैतिक समस्याओं को तत्कालीन कला में स्थान मिला।

जी.एम. शेख,
सिटी फ़ॉर सेल, (बिक्री के लिए शहर), 1984, विक्टोरिया और अल्बर्ट संग्रहालय, लंदन, यू.के. (यूनाइटेड किंगडम)

उन्होंने तथ्य के साथ कल्पना, आत्मकथा के साथ ख्वाब (फैंट्सी) को संयोजित करने का एक नया रास्ता खोजा और अन्य ऐतिहासिक कला शैलियों से अपनी शैली विकसित की। गुलाम मोहम्मद शेख ने बड़ौदा के पुराने बाज़ार की व्यस्त गलियों को चित्रित किया। इस दौरान उन्होंने सिएना के एक मध्ययुगीन शहर

और इटली के लोरेंज़ेट्टी बंधुओं की शैली से भी प्रेरणा प्राप्त की। कला इतिहास के शिक्षक होने के कारण, उन्हें पता था कि विश्व के विभिन्न भागों के कलाकारों ने पहले के समय में किस प्रकार चित्रण किया।

के.जी. सुब्रमण्यन, शेख के शिक्षक और बड़ौदा स्कूल के संस्थापक सदस्य थे। उन्होंने शांतिनिकेतन में अध्ययन किया था और अपने शिक्षकों, बिनोद बिहारी मुखर्जी और रामकिंकर बैज से कला की सार्वजनिक भूमिका के बारे में सीखा था। वे भित्ति चित्रण या बड़े सार्वजनिक भवनों पर निर्मित कला में रुचि रखते थे, जिसे सभी द्वारा देखा जा सकता है। वह सैंड कास्टिंग की तकनीक से आकर्षित थे, जो स्थानीय राजस्थानी कलाकारों को ज्ञात थी। उन्होंने राजस्थानी कलाकारों से सीखा कि कैसे रूपाकारों की मूल इकाई को दोहराकर बड़े पैमाने पर उभारयुक्त मूर्तियाँ बनाई जाती हैं।

उनके द्वारा निर्मित अनेक भित्ति चित्रों में से, एक प्रसिद्ध कलाकृति कला भवन की बाहरी दीवार पर बनी है। वह नहीं चाहते थे कि कला केवल दीर्घाओं तक ही सीमित रहे, बल्कि वह सार्वजनिक भवनों पर निर्मित की जाए ताकि सभी उसे देख सकें। कला का ऐसा सार्वजनिक दृश्य 'प्लेस फ़ॉर पीपल' नामक 1981 की एक ऐतिहासिक प्रदर्शनी में भी देखा जा सकता है। इसे दिल्ली और बॉम्बे में दिखाया गया था और इसमें छह कलाकार थे—भूपेन खक्कर, गुलाम शेख, विवान सुंदरम, नलिनी मालानी, सुधीर पटवर्धन और जोगेन चौधरी। प्रथम दो कलाकार बड़ौदा

के.जी. सुब्रमण्यन, तीन पौराणिक देवियाँ, 1988, कला भवन, शांतिनिकेतन, पश्चिम बंगाल, भारत

से थे और प्रख्यात कला समीक्षक, गीता कपूर ने इसके बारे में लिखा है। अब तक, हमने स्वयं कलाकारों द्वारा लिखे गए घोषणापत्र देखे, लेकिन इस संदर्भ में, कला समीक्षक की भूमिका यह समझाने के लिए महत्वपूर्ण थी कि कलाकार क्या व्यक्त करना चाहते थे।

भूपेन खक्कर जैसे चित्रकार ने स्थानीय नाई या एक घड़ी मरम्मत करने वाले को उसी रूप में चित्रित किया जैसे समलैंगिक पुरुषों और मध्यम वर्ग की नैतिकता के साथ उनके संघर्ष के अनुभवों को चित्रित किया है। बड़ौदा के कथात्मक चित्रकारों का एक महत्वपूर्ण योगदान था उनकी उदार अभिरुचि और लोकप्रिय रूपाकारों का कला में संयोजन राजमार्गों के ट्रकों से लेकर ऑटोरिक्शा तक, छोटे शहरों के गली-मोहल्लों और छोटी दुकानों में हर जगह दिखाई देते हैं।

खक्कर के साहसिक कदम और बड़ौदा के कलाकारों के लोक कला उत्थान से प्रेरणा लेते हुए, मुंबई के युवा चित्रकारों ने विज्ञापनों और फ़िल्म होर्डिंग्स से लेकर कैलेंडर के लोकप्रिय आकृतियों से प्रेरणा प्राप्त की। ये चित्रकार अपने कैनवास पर फ़ोटोग्राफ़िक आकृतियों का उपयोग करने लगे थे।

यह शैली अभी तक जो शैली हमने देखी है, उससे बहुत भिन्न है। यह अपने अर्थ में आधुनिक नहीं है। यह द्वि-अर्थी और प्रयोगात्मक तकनीकी पर आधारित है और यहाँ तक कि जलरंग की इस तकनीक में एक चित्र को छायाचित्र (फ़ोटोग्राफ़) की शैली में बनाया जाता है।

भूपेन खक्कर, 'जनता वॉच रिपेयरिंग', 1972, निजी संग्रह, भारत

न्यू मीडिया आर्ट— 1990 के दशक से

भारतीय अर्थव्यवस्था के उदारीकरण के परिणामस्वरूप 1990 के दशक में बड़े शहरों में वैश्वीकरण का प्रभाव सबसे पहले अनुभव किया गया। एक तरफ भारत ने सूचना प्रौद्योगिकी में बहुत उन्नति की, वहीं इसमें कई विशिष्ट सामाजिक और राजनीतिक मुद्दों को भी देखा गया। आर्थिक प्रगति और सामाजिक अशांति के ऐसे असाधारण समय में, कलाकार बदलाव के उस समय पर अपनी प्रतिक्रिया देने के तरीकों की खोज करने लगे। चित्रकला और मूर्तिकला जैसे माध्यम जिस पर जो कलाकार अपनी विशिष्ट सृजनात्मक अभिव्यक्ति के लिए गर्व से हस्ताक्षर करते थे, ने अपना महत्व खो दिया। इसके अतिरिक्त, वीडियो जैसे नए उपलब्ध माध्यमों ने उनका ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया। यहाँ तक कि फ़ोटोग्राफ़ी भी उन्हें अधिक आकर्षक लगी, क्योंकि इससे अनेक प्रतियाँ बनाकर कई लोगों तक पहुँचाने की सुविधा थी।

© NCERT not to be republished

हालाँकि, कला का वह रूप जो उत्तरोत्तर समकालीन था, वह संस्थापन कला थी। इसने चित्र, मूर्तिकला, फ़ोटोग्राफ़ी, वीडियो और यहाँ तक कि टेलीविज़न को भी एक साथ संयोजित करने का एक अवसर प्रदान किया। यह माध्यम पूरे हॉल में फैल सकता है और वह चारों ओर से लोगों का ध्यान आकर्षित कर सकता है। एक दीवार पर हम चित्र देख सकते हैं, दूसरी दीवार पर काँच के शोकेश में प्रदर्शित छायाचित्रों के साथ दीवार से लटकी मूर्तियों का दूसरा वीडियो। इससे एक नए गहरे अनुभव की प्राप्ति हुई जिसने हमारी सभी इंद्रियों को प्रभावित किया। हालाँकि, यह प्रौद्योगिकी पर अधिक निर्भर था और इसलिए यह आश्चर्य की बात नहीं है कि अधिकांश शुरुआती संस्थापन कलाकार बड़े शहरों से ही आए, जैसे मुंबई से नलिनी मलानी और दिल्ली से विवान सुंदरम। उनकी विषयवस्तु गंभीर और विचारोत्तेजक थी।

फ़ोटोग्राफ़ी को लंबे समय तक चित्रकला का प्रतिद्वंद्वी माना जाता था, क्योंकि वह सरलता से प्रतिकृतियाँ उत्पन्न कर सकता था, जिसने कलाकारों को नए विचार दिए। उन्होंने एक नई तकनीक विकसित की, जिसे 'फ़ोटोयथार्थवाद' कहा जाता है, जिसका प्रयोग अतुल डोडिया ने रेने ब्लॉक गैलरी, न्यूयार्क में 'बापू' नामक कला कृति के निर्माण में किया है। कई युवा कलाकारों ने एक छायाचित्र या टेलीविज़न स्क्रीन की तरह चित्र बनाने के लिए तैल या एक्रिलिक रंगों का प्रयोग किया। टी.वी. संतोष और शिबू नटसन ने एक ओर सांप्रदायिक हिंसा पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करने के लिए 'फ़ोटोयथार्थवाद' का प्रयोग किया और साथ ही साथ हमें भारत की तकनीकी प्रगति के कारण यहाँ के शहरों में होने वाले परिवर्तन की एक झलक भी प्रदान की।

जैसा कि कलाकारों ने देखा कि फ़ोटोग्राफ़ी का प्रयोग समाज में होने वाले परिवर्तनों के प्रमाण के लिए भी प्रयोग किया जा सकता था। शीबा चाची, रवि अग्रवाल, अतुल भल्ला एवं अन्य लोगों ने हमारे समाज के हाशिये पर रहने वाले लोगों की तसवीरें खीचीं जिन पर हम अपने दैनिक जीवन में अधिक ध्यान नहीं देते हैं, जैसे— महिला तपस्वियों, समलैंगिक लोग और इस तरह के अन्य विषय। वे पारिस्थितिकी तंत्र, जैसे— नदियों के प्रदूषण और शहरों की भीड़ आदि पर अकसर अपनी चिंता व्यक्त करते थे। फ़ोटोग्राफ़ी और वीडियो ने अनेक समकालीन कलाकारों को प्रभावित किया है।

समकालीन कला लगातार बदल रही है और प्रौद्योगिकी का प्रयोग करने वाले कलाकार और संग्रहाध्यक्ष दुनिया को बेहतर ढंग से समझने के लिए कला की भूमिका को पुन: परिभाषित कर रहे हैं।

वर्तमान सदी में देश के लगभग सभी बड़े शहरों में सार्वजनिक व व्यक्तिगत कला दीर्घाएँ हैं जहाँ कलाकार समुदाय विविध माध्यमों का प्रयोग करते हुए

© NCERT not to be republished

कला सृजन में लगे हैं। इनमें डिजिटल पेंटिंग भी शामिल है। कलाकारों के प्रयोग, प्रभाव और भावाभिव्यक्ति को सूचीपत्रों (कैटलॉग) के माध्यम से प्रलेखित किया गया है। यहाँ कि सोशल मीडिया ने भी स्थानीय कलाओं के विकास में प्रमुख भूमिका निभाई। दृश्यकला के विद्यार्थी के रूप में आपको अपने शहर के कलाकारों की कृतियों के बारे में पता लगाना चाहिए। वे कलाकार किन शहरों में गए और उनकी कृतियों के बारे में भी सूचनाएँ संग्रहित करनी चाहिए। कला-दीर्घाओं का भ्रमण करके समाज में उनके योगदान के बारे में भी जानने का प्रयास करें।

प्रोजेक्ट

राष्ट्रीय आधुनिक कला संग्रहालय (एन.जी.एम.ए.) या अपने शहर के किसी अन्य संग्रहालय अथवा एन.जी.एम.ए. की वेबसाइट पर जाएँ और अंतर्राष्ट्रीय तथा स्वदेशी कला के संदर्भ में 1947 के बाद आधुनिक भारतीय कला के विभिन्न स्वरूपों को समझने के लिए समय अवधि पर काम करें। विद्यार्थियों को यह भी नोट करना है कि समय सीमा कहाँ समाप्त होती है। शिक्षकों को कला के अर्थ को जनता तक पहुँचाने में संग्रहाध्यक्ष और कला समीक्षकों की भूमिका पर चर्चा करनी चाहिए। प्रत्येक कलाकार द्वारा प्रयुक्त सामग्री के प्रकार पर भी नोट लिखना चाहिए।

© NCERT not to be republished

अभ्यास

1. पटचित्र 'ऑडियो-विज़ुअल' स्टोरी का एक रूप है, जो भारत के कुछ हिस्सों में अभी भी प्रचलित है। कहानी कहने के इस पारंपरिक रूप की तुलना 1980 के दशक के बाद से कुछ बड़ौदा कलाकारों द्वारा अपनाई गई आधुनिक कथाकारिता से करें।
2. वीडियो और डिजिटल मीडिया जैसी नई तकनीक समकालीन कलाकारों को नए विषयों के साथ प्रयोग करने के लिए कैसे प्रोत्साहित करती है? वीडियो कला, संस्थापन कला और डिजिटल कला जैसे विभिन्न कला रूपों पर टिप्पणी करें।
3. आप 'सार्वजनिक कला' से क्या समझते हैं? अपने निवास या स्कूल और उनके आसपास रहने वाले विभिन्न समुदायों के बारे में जानकारी प्राप्त करें और उनकी कला की समझ को जानिए। यदि आपको एक सार्वजनिक स्मारक तैयार करनी है, तो आप इसे कैसे डिज़ाइन करेंगे कि लोग इसके साथ अपनी संबद्धता स्थापित कर सकें?
4. आप कला की दुनिया को कैसे समझते हैं? कला की दुनिया के विभिन्न घटक क्या हैं और ये कला बाज़ार से किस प्रकार संबंधित हैं?

मध्यकालीन संतों का जीवन

'मध्यकालीन संतों का जीवन' हिंदी भवन का एक भित्ति चित्र है, जिसे बिनोद बिहारी मुखर्जी द्वारा 1946–47 के मध्य औपनिवेशिक शासन से भारत के स्वतंत्र होने के कुछ पहले बनाया गया था। यह भित्ति चित्र फ्रेस्को बूनो पद्धति द्वारा कक्ष की तीन दीवारों, ऊपरी अर्द्ध भाग को ढकते हुए करीब 23 मीटर के क्षेत्र में बनाया गया है।

बिनोद मुखर्जी का कौशल, हमें भारतीय जीवन की महान सामंजस्यपूर्ण एवं सहिष्णु परंपरा का स्मरण कराता है जो कि रामानुज, कबीर, तुलसीदास, सूरदास एवं अन्य महान भक्त कवियों के शिक्षण में मिलता है।

अल्प नेत्र ज्योति के बावजूद कलाकार ने सीधे (प्रत्यक्ष) दीवार पर बिना चित्र संयोजन के चित्रण किया। मध्यकालीन संतों का जीवन आधुनिक शैली में चित्रित किया गया, जिसमें बहुत ही कम रेखाओं का अंकन किया गया। एक ही समय में प्रत्येक आकृति, रेखाओं के लयात्मक ताने-बाने से पड़ोस की आकृति से संबंधित होती है और कुछ मायनों में यह भित्ति चित्र बुने हुए चित्रित, सुसज्जित कपड़े का स्मरण कराता है।

© NCERT not to be republished

मदर टेरेसा

एम.एफ़. हुसैन द्वारा बनाया गया मदर टेरेसा का संत जैसी छवि का चित्र 1980 के दशक का है। यह एक विशेष शैली में, उस कलाकार द्वारा चित्रित है जिसने आधुनिक भारतीय कला की नई भाषा का सृजन किया था। मुख विहीन मदर की छवि एक शिशु को हाथों में पकड़े हुए, कई बार चित्र में दिखाई देती है, जहाँ हाथों के चित्रण पर अधिक ध्यान दिया गया है। केंद्र में बैठी हुई माँ की गोद में एक युवक क्षैतिज रूप में लेटा है। यह दृश्य कलाकार की पाश्चात्य कला से घनिष्ठता को दर्शाता है। विशेषतः इतालवी नवजागरण के प्रसिद्ध कलाकार माइकल एंजेलो की कृति पिएटा से इसकी घनिष्ठता उजागर होती है। दूसरी तरफ़ सपाट आकार दृश्य का उपयोग आधुनिकता को दर्शाते हैं। वे पेपर कटआउट के एक कोलाज की तरह दिखाई देते हैं। कलाकार को मदर टेरेसा के जीवन को यर्थाथ रूप में दिखलाने में रुचि नहीं है, बल्कि उन्होंने नितांत संकेतों का प्रयोग किया है। हम जैसे दर्शकों को कहानी का सार समझने के लिए कलाकार संकेत छोड़ता है। यह घुटने के बल बैठी हुई महिला की आकृति है, जो एक तरह से हमें उस कहानी की ओर संकेत करती है जो भारत में असहायों के उपचार एवं पोषण को प्रकट करती है।

हल्दी ग्राइंडर

अमृता शेरगिल ने 1940 में 'हल्दी ग्राइंडर' नामक चित्र चित्रित किया। यह वह समय था जब वह भारत के सुखद ग्रामीण दृश्य से प्रेरणा ले रही थीं। ऐसा दृश्य, जिसमें भारतीय महिलाएँ सूखी हल्दी पीसने की पारंपरिक गतिविधि में व्यस्त हों, को भारतीय शैली में चित्रित किया जाना था। यह आश्चर्यजनक नहीं कि उन्होंने चित्र में चमकदार एवं नम रंगों को प्रयुक्त किया। यूरोप में आधुनिक कला में प्रशिक्षित, उन्हें उत्तरी भारत के 'लघुचित्र शैली परंपरा' एवं 'पॉल गांग' के आधुनिक कला की भी समान समझ थी। एक कलाकार के तौर पर वह प्रशंसनीय थीं। यह इसी का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि उन्होंने चमकीले रंगों को एक-दूसरे के पास लाते हुए बाहरी रेखाओं के बजाय रंग विरोधी संयोजन से व्यक्ति के आकारों को बनाया। इस तरह के चित्र हमें, उदाहरण के तौर पर उत्तर भारत के बसोहली चित्र शैली की याद दिलाते हैं। महिलाएँ एवं पेड़ सपाट आकार से चित्रित हैं। शेरगिल को भू-दृश्य की गहराई बनाने में रुचि नहीं थी और वह आधुनिक कलाकार की भाँति अर्द्ध-अमूर्त स्वरूप को पसंद करती थीं।

© NCERT not to be republished

फ़ेयरी टेल्स फ़्रॉम पूर्व पल्ली

यह चित्रकला एक्रेलिक शीट पर जल और तैलीय रंगों का उपयोग करके 1986 में के.जी. सुब्रमण्यन ने बनाया था। यह एक बहुसर्जनात्मक लेखक, विद्वान, शिक्षक एवं कला-इतिहासकार का कार्य है, जो भारत एवं विश्व की विभिन्न कला परंपराओं के साथ अपने गहरे परिचय से आकर्षित रहा है। यह शीर्षक शांतिनिकेतन के स्थानीय क्षेत्र पूर्व पल्ली में उनके घर को उल्लेखित करता है, जहाँ से उनकी कल्पना विश्व भर में घूमती हुई प्रतीत होती है। उनके काल्पनिक भू-दृश्य में एक अजीब दुनिया है, जिसमें पक्षी एवं जानवर मनुष्यों से अपने कंधे रगड़ते हैं, असामान्य पेड़ हैं जो पत्तियों के स्थान पर पंख उगाते हैं। चित्र की शैली रेखीय (रेखाचित्र) है और रंगों को तीव्रता से ब्रुश से रेखाएँ बनाकर भरा जाता है। रंग संयोजन प्राकृतिक है। धूसर, हरे एवं भूरे रंगों का प्रयोग किया गया है। शीर्ष पर महिला एवं पुरुष की आकृतियाँ कालीघाट जैसे शहरी लोक कला का स्मरण कराती हैं जो कि उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में औपनिवेशिक समय से कलकत्ता में प्रचलित थीं। पुनः पारंपरिक लघुचित्रों की तरह आकृतियाँ एक के ऊपर एक व्यवस्थित की गई हैं बजाय, एक-दूसरे के पीछे सपाट धरातल पर सृजित करते हुए। यह आधुनिक कला का प्रतिनिधित्व करता है।

© NCERT not to be republished

व्हर्लपूल

यह छापाचित्र भारत के सम्मानित छापा कलाकार कृष्णा रेड्डी द्वारा 1963 में बनाया गया था। यह नीले रंग के विभिन्न तानों से बनाया गया एक आकर्षक संयोजन है। प्रत्येक रंग दूसरे रंग में मिश्रित होता हुआ एक सशक्त जाल का आलेखन निर्मित करता है। यह छापाचित्र नयी तकनीक का परिणाम है जिसे इन्होंने एक प्रसिद्ध छापाकार स्टेनले विलियम हेटर के साथ अटेलियर 17 नामक प्रसिद्ध स्टूडियो में विकसित किया था। इस पद्धति को 'विस्कोसिटी प्रिंटिंग' के रूप में जाना जाता है, जिसमें विभिन्न रंग एक ही धातु मुद्रण प्लेट पर एक साथ प्रयुक्त होते हैं। प्रत्येक रंग अलग-अगल मात्रा में अलसी के तेल के साथ मिलाए जाते हैं। जिससे यह सुनिश्चित हो सके कि रंग एक-दूसरे में न मिले। छापाचित्र की विषयवस्तु मुख्यतः जल की तरंग से संबंधित है जो जल एवं तेल किस प्रकार परस्पर अंतर्क्रिया करते हैं, इस समझ पर आधारित है। प्रसिद्ध छापाचित्र न्यूयॉर्क के मेट्रोपॉलिटन म्यूज़ियम ऑफ़ आर्ट में संग्रहित है।

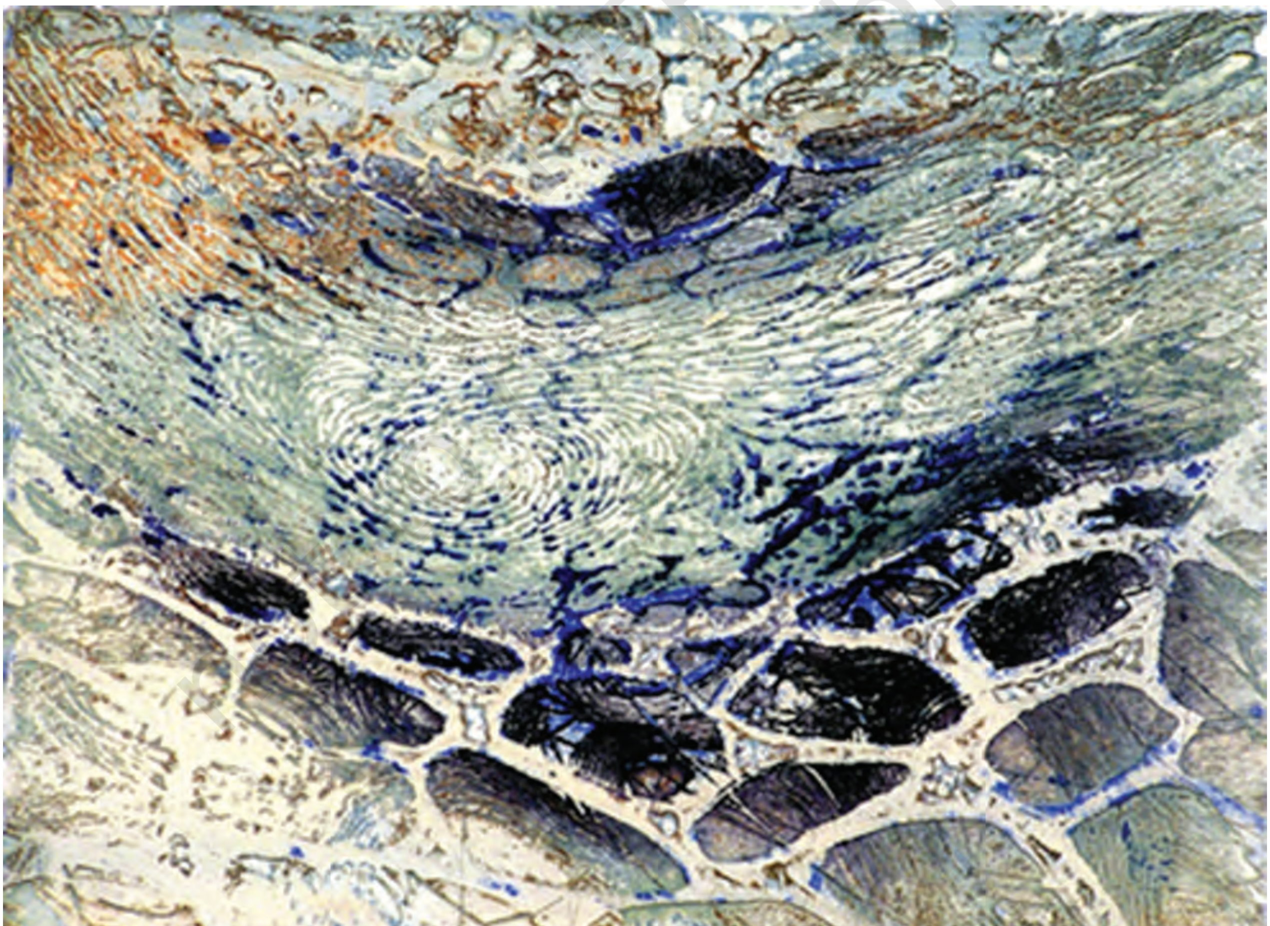

चिल्ड्रन

यह एक ग्राफ़िक प्रिंट है, जिसको कागज़ पर एक रंगीय एचिंग से सोमनाथ होर (1921–2006) ने 1958 में तैयार किया था। इस छापाचित्र में 1943 के बंगाल अकाल को दर्शाया गया है, जिसका गहरा प्रभाव, सोमनाथ होर के ऊपर पड़ा था। उनके आरंभिक ड्राइंग एवं रेखांकन, अकाल के असहाय शिकार लोगों के जीवन से संबंधित तत्कालीन अनुभव से बनाए गए हैं, जिनमें— मरते हुए किसान, उनके दर्द, बीमार और बेघर हुए स्त्री-पुरुषों, बच्चों और जानवरों के चित्र हैं। उनके रेखाचित्रों में हम तान या आभाओं के द्वारा प्रतिरूपण को कभी-कभी देखते हैं। इस एचिंग में 1943 के अकाल ग्रसित बच्चों की त्रासदी को दिखाया गया है, जो वस्तुतः उनकी स्मृति में उकेरे हुए हैं। ये एक सघन बुना हुआ संयोजन है, जिसमें पाँच खड़ी आकृतियाँ बिना किसी पृष्ठभूमि, परिप्रेक्ष्य और परिवेश के आपस में वार्ता करती हुई दिखाई गई हैं। ये आकृतियाँ रेखाप्रधान हैं और इनमें उनका धड़ कंकालनुमा है, जो मलेरिया से ग्रसित है और जिनकी पसलियों की हड्डियाँ स्पष्ट रूप से दिख रही हैं। इन आकृतियों में एक विशाल सिर, छोटा-सा चेहरा और पूरा शरीर पतली-पतली दो डंडे जैसी टांगों पर खड़ा दिखाई देता है। इनकी रेखाएँ बहुत ही मज़बूती से मुद्राओं एवं शरीर को परिभाषित करती हैं, जिनमें स्पष्ट रूप से पसली के पिंजड़े को, गालों की हड्डी की रेखाएँ बहुत स्पष्ट, गहरे कटे हुए घाव जैसा दिखाई देती हैं। त्वचा के नीचे हड्डियों की संरचना कुपोषण के प्रभाव को दिखाती है। यह चित्र कहानी के गुणों को उत्पन्न करता है। बिना किसी दृश्यगत आँकड़ों की सहायता के, इसे दिखाने के लिए बहुत ही सरल और संक्षिप्त विधि का प्रयोग किया गया है। ये बच्चे समाज के सबसे कमज़ोर वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। सोमनाथ होर की अन्य कलाकृतियों में पीजैंट्स मीटिंग, वाउन्डेड एनिमल, द चाइल्ड, मदर विद चाइल्ड, मोरनर्स एंड द अनक्लैड बेगर फ़ैमिली आदि प्रमुख हैं।

© NCERT not to be republished

देवी

यह कागज़ पर छपा ज्योतिभट्ट (1934) द्वारा 1970 में बनाया गया एचिंग है। ज्योतिभट्ट ने चित्रकला, छापाकला एवं छायांकन का अध्ययन किया और वह अपने गुरु के.जी. सुब्रमण्यन से प्रभावित थे। उन्होंने लोक परंपराओं और लोकप्रिय प्रविधियों के आधार पर अपनी स्वयं की कला भाषा को विकसित किया। उनके कार्य में पारंपरिक स्थानीय कलाओं एवं आधुनिकता के बीच के कोमल संबंध को देखा जा सकता है, जिसमें अतीत के पारंपरिक रूपाकार को समकालीन गत्यात्मकता में अनुवादित (रूपांतरित) किया गया है। इस छायाचित्र में देवी की छवि को पुनः संदर्भित और परिभाषित किया गया है, जहाँ सम्मुख मुख को रेखीय अंकन और लोक अभिप्राय एवं पैटर्न को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। देवी की आवक्ष छवि को एक प्रतिमा की भाँति स्थापित किया गया है। छापे की द्वि-आयामिकता और अभिप्राय देवी के आवक्ष के तांत्रिक दर्शन को अभिव्यक्त करते हैं। साथ ही साथ वे स्वविकास और स्वयं उत्पत्ति की शक्ति का भी जीवंत प्रस्तुतीकरण दर्शाती है। जिसमें शक्ति की वास्तविकता को गतिशीलता एवं स्थायित्व के सिद्धांत के रूप में देखा जाता है। ज्योतिभट्ट के अन्य प्रसिद्ध चित्रों में कल्पवृक्ष, सेल्फ़ पोट्रेट, विस्मृत स्मारक, सीता का तोता, स्टील लाइफ़ विद टू लेंपस्, स्केटर्ड इमेज अंडर द वार्म स्काई, तीर्थांकर आदि हैं।

not to be republished © NCERT

ऑफ़ वाल्स

प्रस्तुत चित्र एचिंग है, जिसे ज़िंक प्लेट से कागज़ पर छापा गया है। इसकी रचना अनुपम सूद ने 1982 में की थी। अनुपम सूद ने छापाचित्र कला का अध्ययन स्लेड स्कूल ऑफ़ फ़ाइन आर्ट्स, यूनिवर्सिटी कॉलेज, लंदन से 1970 के दशक में किया। भारत लौटने पर उन्हें भारत के दैनिक जीवन के यर्थाथ ने चित्रण के लिए प्रेरित किया। समाज के हाशिये पर रह रहे लोगों की विभिन्न सामाजिक समस्याओं में गहरी रुचि होने के बावजूद अनुपम सूद ने उन्हें कलात्मक रूप से समझने के लिए गहरी रुचि प्रदान की। इस चित्र में यह स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है कि किस प्रकार उन्होंने एक स्त्री के रिक्त मुखाकृति के द्वारा एक नारी का आकर्षक चित्र सृजित किया। मुखाकृति में विवरणों के अभाव में भी अनुपम सूद, दुख और विषाद के भावों को सहजता से स्पष्ट कर देती हैं। चित्र में एक नारी विदीर्ण दीवार के साथ फुटपाथ पर अकेली बैठी है। अग्रभूमि में हमें एक सोते हुए गरीब व्यक्ति का अधोभाग दर्शाया गया है जिसके विपरीत स्त्री को वस्त्रों में अंकित किया गया है। यह संपूर्ण संयोजन इस छायाचित्र में विषाद के भाव को अभिव्यक्त करता है।

रूरल साउथ इंडियन मेन-वुमन

यह कागज़ पर लक्ष्मा गौड़ (1940) द्वारा 2017 में बनाई गई एचिंग है। एक कुशल ड्राफ़्ट्स मेन और प्रिंट निर्माता लक्ष्मा गौड़ ने भित्ति चित्र एवं छापाचित्र की शिक्षा एम.एस. विश्वविद्यालय बड़ौदा से प्राप्त की थी। उन पर उनके शिक्षक के.जी. सुब्रमण्यन की प्रयोगधर्मी दृश्य परंपराओं के चित्रण, शास्त्रीय लोक और जनप्रिय संस्कृति का विशेष प्रभाव था। लक्ष्मा गौड़ ललित कला एवं शिल्प के तीखे विभेद को कम करने का प्रयास करते हैं और एक नई भावात्मक शैली प्रस्तुत करते हैं, जिसके कारण वे एक साथ कई माध्यमों पर अपना समान अधिकार स्थापित करते हैं, जैसे— ग्लास पेंटिग, टेराकोटा और कांस्य विद्या। प्रस्तुत एचिंग में मानवाकृतियों को पृष्ठभूमि में पेड़ के साथ अंकित किया गया है जो उनकी बचपन से संबंधित ग्रामीण पृष्ठभूमि की स्मृतियों पर आधारित है। उन्होंने चित्र में ग्रामीण जीवन को शहरी शालीनता के साथ प्रस्तुत किया है, जिसमें अति यथार्थवादी मनोवैज्ञानिक आभा कविता और कल्पना के साथ मिश्रित होकर सतह पर दिखाई देती है। इस दृष्टांत में ग्राम्य गीतों को कृषक पुरुषों एवं स्त्रियों के द्वारा चित्रांकित किया गया है। जो यथार्थवादी अवयवों को उच्च अलंकारिकता के साथ ग्रामीण रूप की वास्तविकता में प्रस्तुत करता है, लेकिन साथ ही शैलीगत सौम्यता के प्रति झुकाव भी देखा जा सकता है, जिससे आकृतियाँ कठपुतली की भाँति प्रतीत होती हैं। छापाचित्र रेखांकन पर आधारित रंगीन छवि है, जो कलात्मक दृष्टि से यथार्थवादी किंतु सामान्य और सौम्य अभिव्यंजनावादी विरूपण है। लक्ष्मा गौड़ की अन्य प्रमुख कलाकृतियाँ वुमन, मेन, लैंडस्कैप ऑफ़ टर्की, अनटाइटल्ड, शियान चाइना आदि हैं।

© NCERT not to be republished

ट्राइम्फ़ ऑफ़ लेबर

यह विशालकाय कांस्य मूर्तिशिल्प, देवी प्रसाद राय चौधरी (1899–1975) द्वारा निर्मित है। इसे चेन्नई के मरीना तट पर 1959 में गणतंत्र दिवस की पूर्व संध्या पर स्थापित किया गया था। इस शिल्प में चार पुरुष आकृतियों को एक चट्टान को हिलाने (सरकाने) का प्रयास करते दिखाया गया है, जो राष्ट्र निर्माण में मानवीय श्रम के महत्व एवं योगदान को दर्शाता है। इस शिल्प में अजेय पुरुष प्रकृति के साथ कठिन एवं दृढ़सकंल्प शक्तिशाली युद्ध करते दिखाए गए हैं। यह श्रम की प्रकृति के विरुद्ध वह छवि है जो उन्नीसवीं शताब्दी का एक लोकप्रिय स्वच्छंद विषय रहा है। देवी प्रसाद को श्रमिकों की मज़बूत मांसपेसियों, शारीरिक संचरना के प्रति विशेष आकर्षण था, इसलिए वह उनकी अस्थियों, मांसपशियों, नसों और मांसलता के माध्यम से प्रस्तुत करते हैं। इस प्रयास में अकसर उनके चित्र कृशकाय देहयष्टि के साथ प्रस्तुत किए गए हैं। उन्होंने शिल्प में विशाल, भारी स्थिर चट्टान को हिलाने के लिए कठिन शारीरिक श्रमशक्ति की अभिव्यंजना की है। मानव आकृतियाँ इस प्रकार से संयोजित की गई हैं कि वे दर्शक में जिज्ञासा उत्पन्न करती हैं और दर्शक चारों तरफ से घूमकर शिल्प को देखने के लिए आकर्षित होता है। इस शिल्प में श्रमिक आकृतियों का समूह एक सार्वजनिक स्थान पर ऊँचे अधिष्ठान पर स्थापित है। यह ठीक उस परंपरा के विपरीत है, जिसमें राजा या ब्रिटिश गणमान्यों की प्रतिमाएँ (पोट्रेट) लगाई जाती थीं।

© NCERT not to be republished

संथाल फ़ैमिली

रामकिंकर बैज ने 1937 में इस विशालकाय मूर्तिशिल्प को निर्मित किया था। इसका निर्माण धातु के आमेटर और कंक्रीट मिश्रित सीमेंट से किया गया है तथा भारत के सर्वप्रथम राष्ट्रीय कला विद्यालय, 'शांतिनिकेतन' के कलाभवन प्रांगण में रखा गया है। इस शिल्प में एक दृश्य उपस्थित किया गया है, जिसमें संथाल पुरुष अपने बच्चों को एक डंडे से जोड़े हुए दोहरी टोकरी में ले जा रहा है और साथ ही बगल में पत्नी को उसके साथ चलते हुए प्रदर्शित किया गया है, दूसरी तरफ एक कुत्ते को दिखाया गया है। संभवतः यह शिल्प, प्रवासी परिवार के एक स्थान से दूसरे स्थान की ओर पलायन यात्रा को दिखाता है, जो अपनी समस्त संपत्ति को ले जा रहा है। यह कलाकार के लिए दैनिक दृश्य है, जिस ग्रामीण पर्यावरण के मध्य वो रहता है, लेकिन वह इसे एक स्मारकीय स्तर प्रदान करता है। यह शिल्प चारों तरफ से उकेरकर बनाया गया है अर्थात् दर्शक इसे सभी दिशाओं से देख सकता है। यह एक कम ऊँचे अधिष्ठान पर रखा गया है। दर्शक को यह अनुभव होता है कि यह शिल्प दर्शक के ही तत्कालीन है। इस शिल्प का महत्व इस तथ्य पर है कि यह भारत का प्रथम आधुनिक जनमूर्ति शिल्प है। इसे देखने के लिए हमें संग्रहालय में जाने की आवश्यकता नहीं है। यह खुले में रखा गया है, जिससे सभी इसे देख सकें। इसके निर्माण में प्रयुक्त सामग्री इस शिल्प को और अधिक महत्वपूर्ण बना देती है, क्योंकि कलाकार ने पारंपरिक माध्यम, जैसे— संगमरमर, लकड़ी या पत्थर का प्रयोग न करते हुए सीमेंट को वरीयता दी है, जो आधुनिकीकरण का प्रतीक है।

© NCERT not to be republished

क्राइज़ अन हर्ड

यह कांस्य मूर्तिशिल्प अमरनाथ सहगल द्वारा 1958 में बनाया गया है, हालाँकि कलाकार ने केवल अमूर्तन का प्रयोग किया है, जिसमें तीन आकृतियाँ छड़ी की भाँति और सपाट लयबद्ध समतल दिखाई देती हैं। यद्यपि उन्हें एक परिवार अर्थात् पति, पत्नी एवं एक बच्चे के रूप में आसानी से समझा जा सकता है। वे अपनी बाहों को ऊपर उठाए हुए हैं और सहायता के लिए चीखते हुए दिखाए गए हैं। मूर्तिशिल्प के माध्यम (साम्रगी) से हाथ के संकेत अभिव्यक्त करके उनकी विवशता को एक स्थायी आकार में बदल दिया है। इस मूर्तिशिल्प को समाजवादी के रूप में समझना संभव है, जहाँ पर कलाकार अपनी श्रद्धांजलि उन लाखों निस्सहाय परिवारों को देता है, जिन्हें सहायता की आवश्यकता है और जिनकी चीखें बहरे कानों में पड़ती हैं। समाजवादी कवि के अलावा, मुल्कराज आनंद ने इस कार्य के विषय में हृदयस्पर्शी ढंग से लिखा है। यह कलाकृति अब राष्ट्रीय आधुनिक कला संग्रहालय, नयी दिल्ली में संग्रहित है।

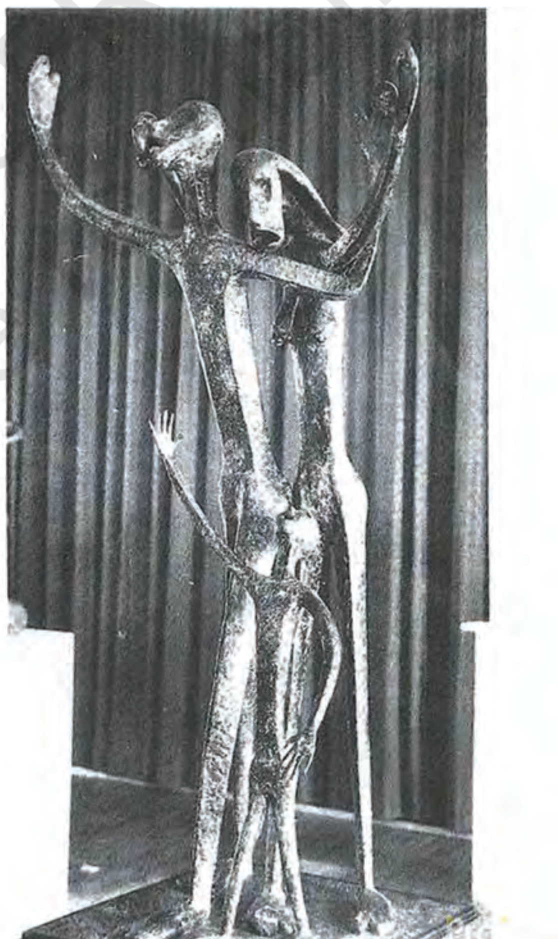

© NCERT not to be republished

गणेश

यह मूर्तिशिल्प ऑक्सीकृत ताँबे में पी.वी. जानकीराम द्वारा 1970 में बनाया गया है। यह मूतिशिल्प एन.जी.एम.ए., दिल्ली में संग्रहित हैं। उन्होंने चित्रात्मक मूर्तिकला को मुक्त रूप में बनाने के लिए ताँबे की धातुशीट (चादर) का उपयोग किया है और रैखिक तत्वों के साथ उसकी सतह को अलंकृत किया है। धातु की चादर को पीटकर अवतल सतह बनाई गई है और उस पर रैखिक विवरणों को वेल्ड किया गया है। ये रैखीय और अलंकारिक तत्व धार्मिक प्रतिमाओं के रूप में गंभीर चिंतन को आमंत्रित करते हैं। जानकीराम, दक्षिण भारत के प्राचीन मंदिरों के मूर्तिशिल्प से प्रभावित हैं। गणेश की आकृति को सम्मुख मुद्रा में तैयार किया गया है, जो कि गुफा एवं मंदिर मूर्तिशिल्प का एक महत्वपूर्ण देशज चरित्र है। हिंदू धर्म में गणेश लोकप्रिय एवं सबसे अधिक पूजे जाने वाले देवताओं में से एक हैं। इस मूर्तिशिल्प में गणेश एक संगीत वाद्ययंत्र, वीणा बजा रहे हैं। साम्रग्रियों का तकनीकी सम्मिश्रण होने के बाद भी मूर्तिशिल्प का विवरण उनके शिल्प कौशल को प्रकट करता है। उन्होंने देशज कौशलता (कारीगरी) को खुलेपन की गुणवत्ता के साथ भी प्रयोग किया है। गणेश पारंपरिक शास्त्र एवं विषय के द्वारा पारंपरिक कल्पना की करीबी समझ और उनके ध्वन्यात्मक विकास को प्रकट करते हैं। उन्होंने समग्र रूप में रैखीय विवरणों को विस्तृत रूप दिया है। आयतन मात्रा के होते हुए भी, त्रि-आयामी गुण पर ज़ोर देने के बजाय उन्होंने मूर्तिशिल्प की रूपरेखा रैखिक आकार की तैयार की है। काव्यात्मक शैली के द्वारा लय एवं वृद्धि को सम्मिलित किया गया है। यह लोक एवं पारंपरिक शिल्प कौशलता (कारीगरी) के मिश्रण का एकीकरण भी है।

© NCERT not to be republished

वनश्री

यह शिल्प कार्य, मृणालिनी मुखर्जी द्वारा 1994 में बनाया गया था। उन्होंने इस मूर्ति को बनाने के लिए असामान्य सामग्री का प्रयोग किया। उन्होंने सुतली के रेशों का उपयोग किया, एक ऐसा माध्यम जिसका प्रयोग उन्होंने 1970 के दशक के आरंभ से किया था। जटिल तरीका अपनाते हुए उन्होंने जूट के रेशों से गाँठ लगाते हुए एक जटिल आकार को बुना। यह नई साम्रगी के साथ प्रयोग के वर्षों का परिणाम दिखाई देता है। कई वर्षों तक उनकी कला को कार्य शिल्प के रूप में खारिज किया गया था। केवल हाल ही में उनके रेशों के कार्यों ने उनकी कल्पना की मौलिकता एवं साहस के लिए अत्यधिक ध्यान आकर्षित किया है। 'वनश्री' या 'जंगल की देवी' नामक इस शिल्प में वह इस साधारण साम्रगी को एक स्मारकीय रूप देती हैं। यदि आप आकृति के शरीर को ध्यानपूर्वक देखें, तो आप देख सकते हैं कि इसमें आंतरिक (अंत:) अभिव्यक्ति और उभरे हुए होंठ के साथ एक चेहरा है और सबसे ऊपर एक शक्तिशाली प्राकृतिक देवत्व की उपस्थिति है।

© NCERT not to be republished

भारत की जीवंत कला परंपराएँ 8

12148CH08

भारत में विभिन्न पारंपरिक कलाएँ हैं जो गाँव-शहर, रेगिस्तान, पहाड़ तक फैली हैं। ये कलाएँ आज भी जनमानस द्वारा अपनाई जा रही हैं। अब तक, हमने कला का अध्ययन समय के सापेक्ष किया है। कला अवधि का नामकरण किसी स्थान या राजवंशों के नाम पर किया गया है, जिन्होंने भारतीय उपमहाद्वीप के विभिन्न हिस्सों पर कई वर्षों तक शासन किया। परंतु आम लोगों का क्या? क्या वे रचनात्मक नहीं थे? क्या उनके आसपास कोई कला मौजूद नहीं थी? राजदरबार या कला संरक्षकों के पास कलाकार कहाँ से आते थे? शहरों में आने से पहले वे कहाँ कार्य करते थे? या अभी भी वे अज्ञात कलाकार कौन हैं जो दूर रेगिस्तान, पहाड़, गाँव और ग्रामीण क्षेत्र में हस्तशिल्प बना रहे हैं, जिन्होंने कभी भी कला विद्यालय अथवा डिज़ाइन संस्थान या यहाँ तक कि किसी विद्यालय से औपचारिक शिक्षा भी नहीं ली।

भारत में हमेशा स्वदेशी (देशज या स्थानीय) ज्ञान का भंडार रहा है, जो एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक हस्तांतरण (स्थानांतरित) होता रहा है। प्रत्येक पीढ़ी में कलाकारों ने उपलब्ध सामग्री और तकनीक से सर्वश्रेष्ठ कलाकृतियों का निर्माण किया है। असंख्य विद्वानों ने इन कला रूपों को लघुकला, उपयोगिता कला, लोक कला, जनजातीय कला, जनसाधारण कला, संस्कार कला, शिल्प और इसी तरह के कई नाम दिए हैं। हम जानते हैं कि ये कला अति प्राचीन काल (स्मरणातीत) से अस्तित्व में हैं। पूर्व-ऐतिहासिक काल के भित्ति चित्र और सिंधु काल के मिट्टी के बरतनों, टेराकोटा, कांस्य, हाथी दाँत की कलाकृतियों के उत्कृष्ट उदाहरण हम देख सकते हैं। प्रारंभिक इतिहास और उसके बाद के समय के दौरान, हमें हर जगह कलाकारों के समुदाय के संदर्भ (निशान) मिलते हैं। उन्होंने बरतन और कपड़े, आभूषण और अनुष्ठान या मन्नत की मूर्तियों का सृजन किया है। उन्होंने अपनी दीवारों और फ़र्श को सजाया और कई कलात्मक कार्य अपनी दैनिक ज़रूरतों को पूरा करने के लिए किए। इसके साथ ही स्थानीय बाज़ारों में अपने कलाकृतियों की आपूर्ति भी की। उनकी रचनाओं में स्वाभाविक (प्राकृतिक) सौंदर्यबोध की अभिव्यक्ति है। इनमें प्रतीकात्मकता, रूपांकन का विशेष उपयोग, सामग्रियों, रंग और

© NCERT not to be republished

बनाने की विधियों का विशिष्ट उपयोग लोक कला के निर्माण में किया जाता है। लोक कला और शिल्प के बीच एक पतली रेखा है। इन दोनों में रचनात्मकता, अंत:प्रेरणा (स्वाभाविक), आवश्यकताएँ और सौंदर्यबोध शामिल हैं।

आज भी कई क्षेत्रों में हमें ऐसी कलाकृतियाँ देखने को मिलती हैं। उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी में, भारत और पश्चिम (यूरोप) में एक नया परिप्रेक्ष्य आधुनिक कलाकारों के मध्य उत्पन्न हुआ जब उन्होंने अपनी रचनात्मक गतिविधियों के लिए अपने आसपास की लोक कला (पारंपरिक कला) को प्रेरणा के स्रोत के रूप में स्वीकार किया। भारत में स्वतंत्रता के बाद हस्तकला उद्योग का पुनरुद्धार हुआ। यह क्षेत्र व्यावसायिक उत्पादन के लिए भी संगठित हो गया। इस कला ने एक विशिष्ट पहचान भी प्राप्त की। राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों के गठन के साथ, उनमें से प्रत्येक ने अपने संबंधित राज्य के विक्रय केंद्र (एम्पोरिया) में अपनी विभिन्न अद्वितीय कलाओं और उत्पादों का प्रदर्शन किया है। भारत की कला और शिल्प परंपराएँ भारत के पाँच हज़ार सालों से अधिक की मूर्त (वास्तविक) विरासत के इतिहास को प्रदर्शित करती हैं। हालाँकि हम इनमें से कई को जानते हैं, लेकिन हम उनमें से कुछ के बारे में यहाँ चर्चा करेंगे। मुख्य तौर पर, धार्मिक या अनुष्ठानिक कृतियों में समृद्ध प्रतीक हैं और साथ ही उपयोगी और सजावटी सामग्री जिन्हें हम दिनचर्या में उपयोग में लाते हैं, उनका निर्माण भी किया जाता है।

चित्रकारी परंपरा

मिथिला या बिहार की मधुबनी पेंटिंग, महाराष्ट्र की वरली पेंटिंग, उत्तरी गुजरात और पश्चिमी मध्य प्रदेश की पिथोरो पेंटिंग, राजस्थान की पाबूजी की फड़ पेंटिंग, नाथद्वारा की पिछावई, मध्य प्रदेश की गोंड और सांवरा पेंटिंग, ओडिशा और बंगाल की पटचित्र आदि चित्रकला (लोक कला) के कुछ उदाहरण हैं। यहाँ, उनमें से कुछ पर चर्चा की गई है।

मिथिला कला

मिथिला कला सबसे प्रसिद्ध समकालीन चित्रकला रूपों में से एक है जिसका नामकरण मिथिला प्रदेश के नाम पर आधारित है। मिथिला का प्राचीन नाम विदेह था और ज़िला मधुबनी के नाम पर इसे मधुबनी चित्रकला भी कहा जाता है। यह एक (व्यापक रूप से) मान्यता प्राप्त प्रसिद्ध लोक कला परंपरा है। यह माना जाता है कि सदियों से इस क्षेत्र में रहने वाली महिलाएँ औपचारिक अवसरों, विशेष रूप से विवाह के अवसर पर अपने मिट्टी के घरों की दीवारों पर आकृतियों से अलंकरण करती हैं। इस क्षेत्र के लोग इस कला की उत्पत्ति का समय राजकुमारी सीता और भगवान श्रीराम के विवाह से मानते हैं।

© NCERT not to be republished

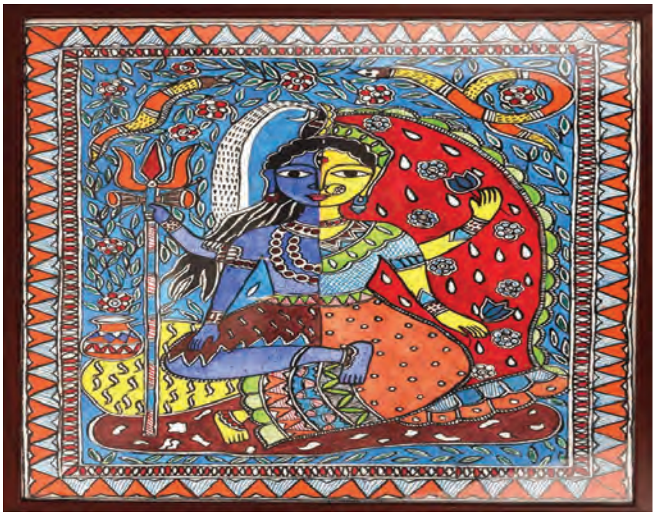

चमकीले रंगों की विशेषता वाले इन चित्रों को मुख्य रूप से घर के तीन क्षेत्रों में चित्रित किया जाता है— केंद्रीय या बाहरी आँगन, घर का पूर्वी भाग (जो कुलदेवी का निवास स्थान है), आमतौर पर, काली और अलग से एक कमरा (जो दक्षिणी भाग में स्थित हो), जिसमें सबसे महत्वपूर्ण चित्र का चित्रण किया जाता है। इस कमरे में विभिन्न अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित देवता के चित्र का चित्रण किया जाता है। पशु या महिलाओं की काम करते हुए छवियों को जैसे कि पानी के बरतन ले जाती हुईं, सूप से अनाज साफ करती हुईं इत्यादि, को बाहरी केंद्रीय प्रांगण में चित्रित किया गया है। भीतर के बरामदे (पारिवारिक देवस्थान या गोसाईं का स्थान है), वहाँ गृह देवता और कुलदेवता का चित्रण किया जाता है। हाल के दिनों में वाणिज्यिक उद्देश्यों के लिए कपड़े, कागज़, बरतन आदि पर इस प्रकार के कई चित्रांकन किए जा रहे हैं।

सबसे असाधारण और रंगीन चित्रण घर के उस हिस्से में किया जाता है जिसे कोहबर घर या भीतरी कमरा नाम से जाना जाता है, जिससे कोहबर की खूबसूरती और अधिक बढ़ जाती है। कमरे के नए पलस्तर पर एक संपूर्ण खिला हुआ कमल अपने डंठल के साथ दीवारों पर चित्रित किया जाता है। इसके साथ ही देवी-देवताओं का भी चित्रण किया जाता है।

अन्य विषयों में *भागवत पुराण*, *रामायण*, शिव-पार्वती की कहानियाँ, दुर्गा, काली और राधा-कृष्ण की रास-लीला के प्रसंग भी चित्रित किए जाते हैं। मिथिला के कलाकारों को रिक्त (खाली) स्थान पसंद नहीं हैं। वे समस्त स्थानों को पक्षियों, फूलों, जानवरों, मछली, साँप, सूर्य और चंद्रमा जैसे प्रकृति के तत्वों से अंकित करते हैं, जिसमें अकसर प्रतीकात्मक अर्थ होता है। यह प्रेम, जुनून, उर्वरता, अनंत काल, कल्याण और समृद्धि का प्रतीक है। महिलाएँ बाँस की टहनियों में कपास, चावल का भूसा या रेशों को लगाकर चित्रण करती हैं। पूर्वकाल में वे खनिज, पत्थर और जैविक सामग्री जैसे कि फालसा और कुसुम के फूल, बिल्व के पत्ते, काजल, हल्दी आदि से रंग बनाती थीं।

वरली चित्रकला

वरली समुदाय उत्तरी महाराष्ट्र के पश्चिमी तट के आसपास के उत्तरी सह्याद्री क्षेत्र में विशाल संख्या में निवास करते हैं। यह क्षेत्र ठाणे ज़िले में है। विवाहित महिलाएँ चौक नामक चित्रांकन में एक केंद्रीय भूमिका निभाती हैं, जहाँ विशेष अवसरों पर वह चौक बनाती हैं। यह शादी, प्रजनन, फ़सल और बुवाई-कटाई के रीति-रिवाज़ों से संबंधित है। चौक देवी माँ पालघाट की आकृति पर आधारित होती है, जिसे मुख्य रूप से प्रजनन की देवी के रूप में पूजा जाता है जो मकई की देवी, कंसारी का प्रतिनिधित्व करती है।

© NCERT not to be republished

कंसारी देवी को एक छोटे वर्ग के फ्रेम में लगाया जाता है जिसके बाहरी किनारों को नुकीले कड़ी (शेवरॉन) से सजाया गया है। यह बाहरी किनारा हरियाली देवता, अर्थात् पौधों के देवता का प्रतीक है। कंसारी देवी के प्रहरी और अभिभावक की कल्पना, एक बिना सिर वाले योद्धा के रूप में की जाती है, वे घोड़े पर सवार या उन पर खड़े होते हैं जिनके गले से पाँच मकई के पौधे उगते हुए चित्रण किया जाता है और इसलिए इन्हें पंच सिर्या देवता (पाँच सिर वाले भगवान) कहा जाता है। यह खेत्रपाल या खेतों के संरक्षक का भी प्रतीक माना जाता है।

वरली चित्रकार अपने आसपास रोज़मर्रा के क्रियाकलाप, मुंबई जीवन, चलती बसें, मछली पकड़ना, खेती, पौराणिक कहानियों के किरदार, नृत्य आदि का चित्रण करते हैं। इन चित्रों को पारंपरिक रूप से चावल के आटे से अपने घरों के भूरंगों के दीवारों पर चित्रित किया जाता है। जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, प्रजनन क्षमता को बढ़ावा देने के लिए, बीमारियों को रोकने के लिए, मृतकों को संतुष्ट करने के लिए और आत्माओं की माँगों को पूरा करने के लिए इन चित्रों का चित्रण किया जाता है। एक बाँस की छड़ी के एक सिरे को चबाकर तूलिका के रूप में उपयोग किया जाता है।

गोंड चित्रकला

मध्य प्रदेश के गोंड की लोक कला मध्य भारत की एक विख्यात चित्रकला है। वे प्रकृति की पूजा करते थे। मंडला के गोंड और इसके आसपास के क्षेत्रों में जानवरों, मनुष्यों और वनस्पतियों के रंगीन चित्रों का चित्रण किया जाता है। ज्यामितीय आकार के धार्मिक चित्रों को झोपड़ियों की दीवारों पर चित्रित किया जाता है। इन चित्रों में कृष्ण को गायों और गोपियों से घिरा हुआ चित्रित किया जाता है। जिनमें गोपियों के सिर पर घड़ा होता है जिसे बालक एवं बालिकाएँ कृष्ण को भेंट कर रहे होते हैं।

© NCERT not to be republished

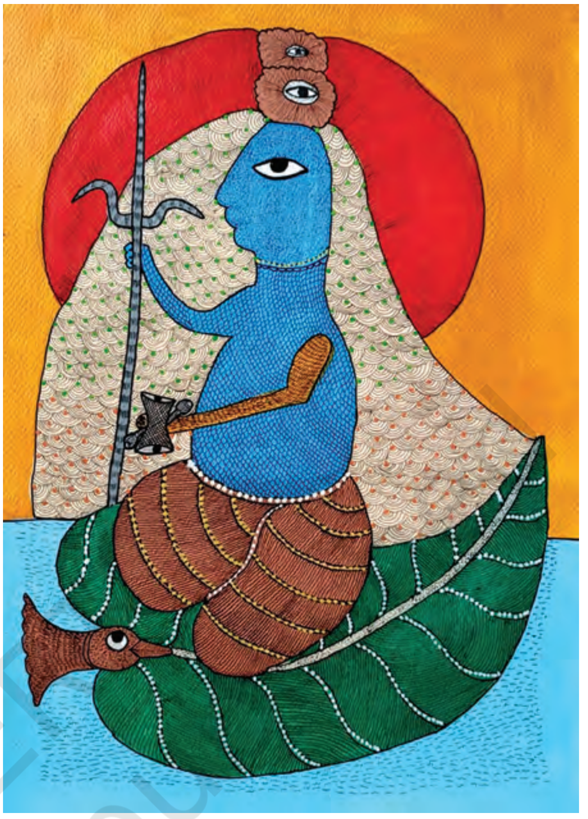

पिठोरो चित्रकला

गुजरात में पंचमहल क्षेत्र के राठवा भीलों और पड़ोसी राज्य मध्य प्रदेश में झाबुआ में चित्रित इन चित्रों को घरों की दीवारों पर विशेष अवसर या धन्यवाद उत्सवों पर चित्रित किया जाता है। ये बड़े भित्ति चित्र हैं, जहाँ पंक्तियों मे कई भव्य रंगीन देवताओं को घोड़े पर सवार दर्शाया जाता है।

घोड़ा सवार देवताओं की पंक्तियाँ, राठवाओं के ब्रह्मांड का प्रतिनिधित्व करती हैं। सबसे ऊपर घुड़सवार देवताओं का खंड, स्वर्गीय निकायों और पौराणिक प्राणियों की दुनिया का प्रतिनिधित्व करता है। एक अलंकृत लहराती रेखा इस खंड को निचले खंड (क्षेत्र) से अलग करती है, जहाँ पिठोरो की शादी की बारात जिसमें गौण देवता, राजाओं, देवियों, एक आदर्श किसान, घरेलू जानवरों इत्यादि को पृथ्वी पर दर्शाया जाता है।

परेश
राठवा

पट चित्रकला

चित्रकला का एक और रूप पटचित्र है जिसे कपड़े, ताड़ के पत्ते या कागज़ पर चित्रित किया जाता है। यह देश के विभिन्न हिस्सों, विशेष रूप से पश्चिम में गुजरात और राजस्थान और पूर्व में ओडिशा और बंगाल में प्रचलित कला रूप है। इसे पट, पचीसी, फड़ आदि के नाम भी जाना जाता है।

बंगाल के पट में कपड़े (पट) पर चित्रकारी होती है जो पश्चिम बंगाल के क्षेत्रों में कहानी कहने का कार्य करते हैं। यह सबसे अधिक सुनने वाली मौखिक परंपरा है, जो लगातार नए विषयों की और दुनिया में प्रमुख घटनाओं पर प्रतिक्रियाएँ प्रस्तुत करती हैं।

लंबवत् चित्रित पट, पटुआ कलाकार द्वारा पट चित्रकला में इस्तेमाल किया जाता है। पटुआ, जिसे चित्रकार भी कहा जाता है, मुख्य रूप से पश्चिम बंगाल के मिदनापुर, बीरभूम और बांकुरा क्षेत्रों के आसपास एवं बिहार और झारखंड के कुछ हिस्सों में बसे समुदायों से संबंधित हैं। पट चित्रण और रखरखाव (संभालना) उनका वंशानुगत पेशा है। वे गाँवों में घूमते हैं, चित्रों को प्रदर्शित करते हैं और चित्रित किए गए आख्यानों को गाते हैं। प्रदर्शन गाँव के साझा (या सामान्य) स्थानों पर होते हैं। पटुआ हर बार तीन से चार कहानियाँ सुनाता है। प्रदर्शन के बाद, पटुआ को नकद या उपहार दिया जाता है।

पुरी पट या चित्रकला, मंदिरों का शहर पुरी, ओडिशा की विख्यात लोक कला है। इसमें शुरुआत में मुख्यतः पट पर चित्रण किया जाता था, लेकिन अब कागज़ पर भी चित्रण किया जाता है। इसमें विभिन्न विषयों का चित्रण किया जाता है, जैसे कि जगन्नाथ, बलभद्र और सुभद्रा के दैनिक और विशेष अवसरों की वेशभूषा (पोशाक), (जैसे— बड़ा श्रृंगार वेश (परिधान), रघुनाथ वेश, पद्म वेश, कृष्ण-बलराम वेश, हरिहरन वेश आदि); रस चित्र, अंसारा पट्टी (गर्भगृह के देवी-देवताओं का प्रतीकात्मक चित्रण जिन्हें, सफ़ाई और स्नानायात्रा के समय नई रंगाई के लिए हटाया जाता है); जात्री पटी (तीर्थयात्रियों के लिए यादगार के रूप में और उन्हें घर के व्यक्तिगत मंदिरों में रखने के लिए), जगन्नाथ की पौराणिक कथाओं की श्रृंखलाओं, जैसे—कांची कावेरी पटा और थिया-बड़हिया पटा, मंदिर के हवाई और पार्श्व दृश्य का संयोजन के साथ देवी-देवताओं और मंदिर के आसपास या त्यौहारों का चित्रण किया जाता है।

© NCERT not to be republished

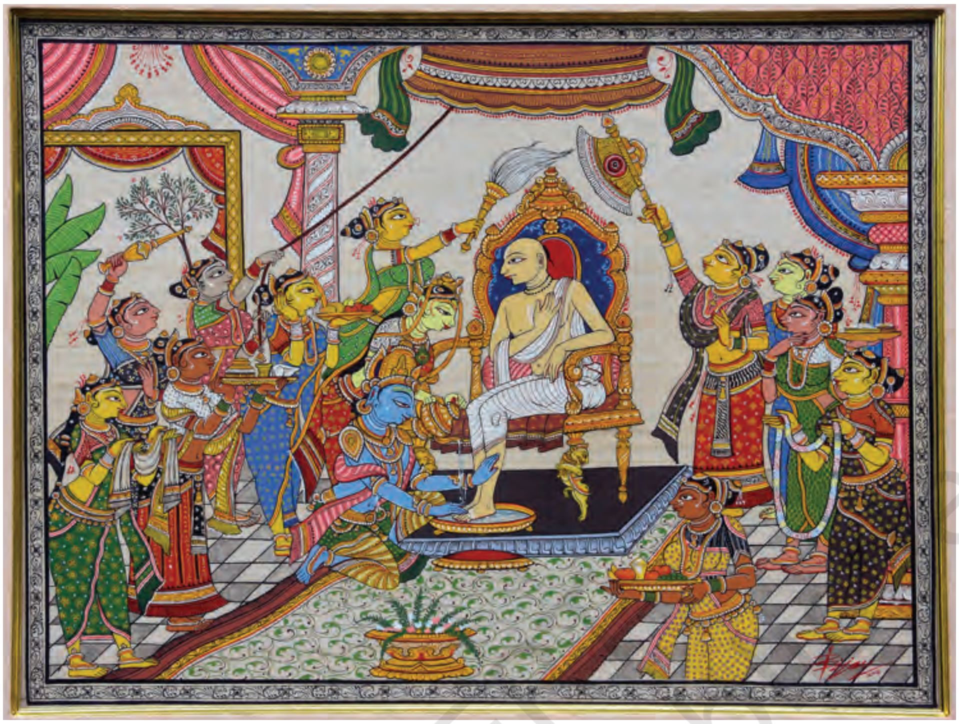

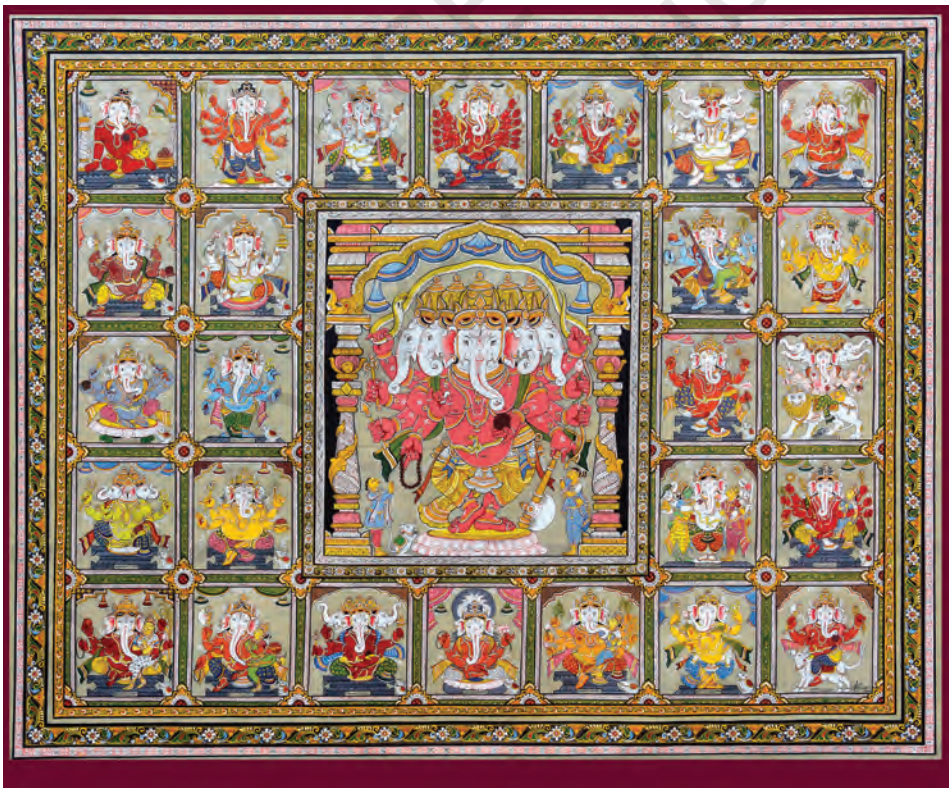

पटचित्रों को सूती कपड़े की छोटी-छोटी पट्टियों या टुकड़ों पर किया जाता है, जिसे मुलायम सफ़ेद पत्थर के चूरन (पाउडर) और इमली के बीजों से बने गोंद के साथ कपड़े के सतह द्वारा तैयार किया जाता है। सबसे पहले किनारों को बनाने की प्रथा है। सीधे तूलिका के उपयोग से आकृतियों की संरचना की जाती है और सपाट रंग भरे जाते हैं। आमतौर पर सफ़ेद, काला, पीला और लाल रंगों का इस्तेमाल किया जाता है। चित्रण पूरा होने के बाद, चित्र को कोयले की आग के ऊपर रखा जाता है और सतह पर लाह को लगाया जाता है जिससे चित्र पानी प्रतिरोधी और चमक उत्पन्न कर सके। रंग, जैविक और स्थानीय रूप से प्राप्त किए जाते हैं। उदाहरणस्वरूप, काला को दीप से, पीला और लाल को क्रमशः हरिताली और हिंगल पत्थर से, सफ़ेद रंग शंख के चूर्ण से प्राप्त किया जाता है। ताड़ की पांडुलिपियों को एक विशेष प्रकार के ताड़, जिसे खर-ताड़ के नाम से जाना जाता है, पर चित्रित किया जाता है। इन पर तूलिका से चित्रण नहीं किया जाता है, बल्कि एक लोहे की कलम से आकृतियों को उकेरा जाता है, फिर स्याही से भरा जाता है और कभी-कभी इनमें रंगों को भी भरा जाता है। इन चित्रों के साथ कुछ लेखन भी संकलन हो सकते हैं। ताड़ पत्र पर चित्रण की कला परंपरा को लोक कला माना जाए या परिष्कृत कला के अंग के रूप में स्वीकार्य किया जाए जिसका संबंध देश के पूर्वी और अन्य हिस्सों की भित्ति और ताड़ पत्र चित्रण की परंपराओं से है, यह एक चर्चा का विषय है।

राजस्थान की फड़ लोक कला

फड़, लंबे, क्षैतिज, कपड़े के पटचित्र होते हैं, जिस पर भीलवाड़ा क्षेत्र के आसपास रहने वाले समुदाय के लोग लोक देवता का चित्रण करते हैं। इनका सबसे महत्वपूर्ण उद्देश्य पशुधन को सुरक्षित रखना होता है। इस तरह के विचार उनकी कहानियों, किंवदंतियों और पूजा पद्धतियों में प्रतिबिंबित होते हैं। उनके देवताओं के साथ उन बहादुर वीरों का भी चित्रण किया जाता है, जिन्होंने अपने प्राणों का बलिदान देकर मवेशियों को लुटेरों से बचाया। इन्हें भोमिया कहा जाता है। इन नायकों को उनके कार्यों और बलिदान या शहादत के लिए सम्मानित, पूजा और याद किया जाता है। भोमिया, जैसे— गोगाजी, जेजाजी, देव नारायण, रामदेवजी और पाबूजी की व्यापक पंथ की परंपरा का राबरिया, गुर्जर, मेघवाल, रैगर और अन्य समुदाय के लोग अनुसरण करते हैं।

इन भोमियाओं की वीरतापूर्ण कहानियों को फड़ पर दर्शाते हैं। भोपों यात्रा करते समय अपने साथ फड़ रखते हैं और भोमियों की वीर गाथाएँ या कथाएँ सुनाते समय इन्हें प्रस्तुत करते हैं। भोपों रात भर चलने वाले कथा प्रदर्शनों में इन नायक-देवताओं से जुड़े भक्ति गीत गाते हैं। जिन चित्रों के बारे में बात की जा रही होती है, उन्हें रोशन करने के लिए फड़ के उस अंश पर एक दीपक से प्रकाश किया जाता है। भोपा और

© NCERT not to be republished

उसका साथी रावणनाथ और वीणा जैसे वाद्ययंत्रों के साथ प्रस्तुति करते हैं और गायन की खयाल शैली का गान करते हैं।

हालाँकि, फड़ को भोपों द्वारा चित्रित नहीं किया जाता है। उन्हें पारंपरिक रूप से 'जोशीस' नामक एक जाति द्वारा चित्रित किया जाता है, जो राजस्थान के राजाओं के दरबार में चित्रकार होते थे। राजदरबार इन चित्रकारों को लघुचित्रों के निर्माण के लिए संरक्षण प्रदान करते थे। इसलिए, कुशल व्यवसायी का संघ, कवि संगीतकार और दरबारी कलाकार फड़ को अन्य सांस्कृतिक परंपराओं से उच्च स्थान प्रदान करते हैं।

मूर्तिकला परंपरा

मूर्तिकला परंपरा, मिट्टी (मृण्मूर्ति), धातु और पत्थर से मूर्तियाँ बनाने की लोकप्रिय परंपराओं से संबंधित है। देशभर में ऐसी अनेक लोक कला परंपराएँ हैं। उनमें से कुछ पर यहाँ चर्चा की गई है।

डोकरा कास्टिंग

लोकप्रिय मूर्तिकला परंपराओं में, कांस्य की ढलाई या सेरे पर्दु तकनीक से बनाई गई डोकरा या धातु की मूर्तियाँ छत्तीसगढ़ के बस्तर, मध्य प्रदेश के कुछ हिस्सों, ओडिशा और पश्चिम बंगाल के मिदनापुर के सबसे प्रमुख धातु शिल्पों में से एक है। इसमें पिघला हुआ मोम विधि के माध्यम से कांस्य की ढलाई शामिल है। बस्तर के धातु कारीगरों को गढ़वा कहा जाता है। लोकप्रिय शब्दावली में 'गढ़वा' शब्द का अर्थ है आकार देना और बनाने की क्रिया। शायद इसी कारण कलाकारों को गढ़वा नाम दिया गया है। परंपरागत रूप से गढ़वा कारीगर ग्रामीणों के दैनिक उपयोग के बरतनों की आपूर्ति के अलावा, आभूषण, स्थानीय रूप से प्रतिष्ठित देवताओं की मूर्ति और मन्नत के चढ़ावा में साँप, हाथी, घोड़े, अनुष्ठान के बरतन आदि का निर्माण करते हैं। इसके बाद समय के साथ समुदाय में बरतन और पारंपरिक आभूषणों की माँग में कमी आने के बाद, इन शिल्पकारों ने नए (गैर-पारंपरिक) रूपों और कई सजावटी वस्तुओं का निर्माण शुरू किया।

डोकरा की ढलाई एक विस्तृत प्रक्रिया है। नदी के किनारे से काली मिट्टी को चावल की भूसी के साथ मिलाकर पानी से गूंधा जाता है। मुख्य आकृति (कोर फ़िगर) या मोल्ड को इसी से बनाया जाता है। सूखने के बाद इस पर गोबर में मिट्टी मिलाकर इसे दूसरी परत से ढक दिया जाता है। साल के पेड़ से एकत्रित राल को तब तक मिट्टी के बरतन में गर्म किया जाता है जब तक कि वह तरल न हो जाए, इसमें कुछ सरसों का तेल भी मिलाकर उबाला जाता है। उबलते तरल को एक कपड़े के माध्यम से छान लिया जाता है और पानी के ऊपर एक धातु के बरतन में इकट्ठा कर

© NCERT not to be republished

© NCERT not to be republished

रखा जाता है। परिणामस्वरूप राल जम जाता है लेकिन नरम और मुलायम रहता है। फिर इसे छोटे-छोटे टुकड़ों में अलग कर दिया जाता है, कोयले की धीमी आँच पर इन्हें थोड़ा गर्म किया जाता है और फिर उत्कृष्ट धागे या कुंडल में फैलाया जाता है। ऐसे धागे पट्टियाँ बनाने के लिए एक साथ जुड़ जाते हैं। सूखी मिट्टी के आकार के ऊपर इन राल के पट्टियों या कुंडल को मढ़ा या जोड़ा जाता है और फिर सभी सजावटी विवरण, जैसे— आँखें, नाक आदि को आकृति के साथ बनाया जाता है। उसके बाद मिट्टी के ढाँचे से ढक दिया जाता है। सबसे पहले महीन मिट्टी की परत से, फिर मिट्टी और गाय के गोबर के मिश्रण की परत से और अंत में, चावल की भूसी के साथ चींटियों द्वारा बनाए गए मिट्टी के टीलों से प्राप्त मिट्टी की परत चढ़ाते हैं। फिर उसी मिट्टी से बनाए गए एक पात्र को आकृति के निचले हिस्से में जोड़ दिया जाता है। दूसरी तरफ, धातु के टुकड़ों से भरे एक कप को मिट्टी-चावल की भूसी के मिश्रण से बंद कर दिया जाता है। भट्ठी में आग के लिए, साल की लकड़ी या उसके कोयले को ईंधन के रूप में उपयोग किया जाता है। धातु युक्त कप को नीचे मिट्टी के साँचे के साथ रखा जाता है और जलाऊ लकड़ी और बरतन से ढक दिया जाता है। धातु को पिघले हुए अवस्था में बदलने के लिए लगभग 2 से 3 घंटे तक हवा को भट्ठी में लगातार भरा या उड़ाया जाता है। साँचे को चिमटे की मदद से बाहर निकाला जाता है, फिर उसे उलटा कर दिया जाता है, इसके साथ एक तेज़ झटका दिया जाता है और धातु को पात्र (रिसेप्टेक) के माध्यम से डाला जाता है। राल के स्थान पर पिघला हुआ धातु प्रवाहित होता है, जो अब तक वाष्पित हो चुका होता है। साँचे को ठंडा होने के लिए छोड़ दिया जाता है और धातु की छवि को प्रकट करने के लिए मिट्टी की परत को तोड़ दिया जाता है।

मृण्मूर्ति

देशभर में सर्वाधिक प्रचलित सर्वव्यापी मूर्तिकला मृण्मूर्ति (टेराकोटा) है। आमतौर पर कुम्हारों द्वारा बनाए गए मृण्मूर्ति मन्नत की पूर्ति पर स्थानीय देवताओं को चढ़ाए जाते हैं या अनुष्ठान और त्यौहारों के दौरान उपयोग किए जाते हैं। वे नदी किनारे या तालाबों पर पाई जाने वाली स्थानीय मिट्टी से बने होते हैं। मृण्मूर्तियों को स्थायित्व के लिए पकाया जाता है। उत्तर-पूर्व में मणिपुर हो या असम, पश्चिमी भारत में कच्छ, उत्तर में पहाड़ियाँ, दक्षिण में तमिलनाडु, गंगा के मैदान या मध्य भारत हो, विभिन्न क्षेत्रों के लोगों द्वारा विभिन्न प्रकार की मृण्मूर्तियाँ बनाई जाती हैं। उन्हें ढाला जाता है, हाथों से बनाया जाता है या कुम्हार के चाक पर बनाया जाता है फिर रंगा या सजाया जाता है। उनके रूप और उद्देश्य अकसर समान होते हैं। वे प्राय: देवी या देवताओं की आकृतियाँ होती हैं, जैसे— गणेश, दुर्गा या स्थानीय देवता, पशु, पक्षी, कीड़े आदि।

© NCERT not to be republished

टिप्पणी

© NCERT not to be republished

शब्दकोश

अंतर्राष्ट्रीयवाद	—	कला की एक प्रवृत्ति जो खुले तौर पर यूरोप और संयुक्त राज्य अमरीका के कला आंदोलनों को स्वीकार करती है। स्वतंत्रता के पश्चात् भारतीय कलाकारों ने 1950 के दशक में आधुनिकता से प्रभावित होकर अपने व्यवहार में इसे अपनाया और विश्व के आधुनिक कलाकारों के साथ अपनी सहभागिता दर्ज की।
अकादमिक यथार्थवाद या अकादमिक कला	—	यूरोपीय अकादमियों या विश्वविद्यालयों के प्रभाव से उत्पन्न चित्रकला और मूर्तिकला की एक शैली है। भारत में यह औपनिवेशिक काल के दौरान आई, जब उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में कला अकादमियों की कलकत्ता (अब कोलकाता) मद्रास (अब चेन्नई) और लाहौर में स्थापना की गई थी।
अमूर्तन और अमूर्त कला	—	अमूर्त कलाकार रूपाकारों को बहुत सरलीकृत करता है या उन्हें अतिशय रूप में प्रस्तुत करता है जिनका प्रयोग आधुनिक काल में देखा जाता है, यद्यपि वे पहले भी अस्तित्व में थे।
अभिव्यंजनावाद	—	अभिव्यंजनावाद शब्द कला में तीव्र संवेग को अभिव्यंजित करने वाला शब्द है। अभिव्यंजनावाद एक कलात्मक शैली है, जिसमें कलाकार अपनी भौतिक यथार्थ की अपेक्षा संवेदना या मनोभावों को व्यक्त करता है। अभिव्यंजनावादी कलाकार यथार्थ को अतिरेक के द्वारा विरूपित करते हैं और अपने विचारों और मनोभावों को व्यक्त करने के लिए वे ओजपूर्ण स्पष्ट तूलिका आघात और तीव्र रंगों का प्रयोग करते हैं।
आधुनिकतावाद	—	एक ऐसी परिघटना है, जिसने मानव जीवन में परिवर्तन एवं सुधार किया। यह विश्वव्यापी प्रतिक्रिया है, जिसने मानव के जीवन में सभी पक्षों को प्रभावित किया है। उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक में अपने आगमन से आधुनिकतावाद ने मानव के सोचने के तरीके को निर्देशित किया है। आधुनिकतावाद की संकल्पना जो मुख्य रूप से एक दर्शन एवं व्यवहार के रूप में विकसित हुई और गैर यूरोपीय देशों— अमेरिका, अफ्रीका, आस्ट्रेलिया उपनिवेश के साथ वहाँ पर पहुँची।

© NCERT not to be republished

आवां गार्द — 'आवां गार्द' एक फ्रांसीसी भाषा का शब्द है जिसका प्रयोग उन नवाचारी कलाओं, के लिए प्रयुक्त होता है जो वर्तमान में स्थापित सौंदर्यात्मक मूल्यों, प्रतिमानों एवं राजनीतिक सिद्धांतों को स्वीकार नहीं करती हैं। भारत में यह राजनैतिक कट्टरपंथी और उदार बुद्धिजीवियों से संबंध रखता है।

एचिंग — वुडकट के विपरीत एचिंग में उभरा हुआ भाग रिक्त रहता है जबकि गहरे भाग में स्याही भरी जाती है। शुद्ध एचिंग में ताँबा, जस्ता और स्टील की प्लेट मोम या एक्रिलिक लेप से ढकी हुई होती है। कलाकार इससे मोम या एक्रिलिक से ढकी हुई सतह पर नुकीली सुई के द्वारा रेखांकन करता है। इसके बाद धातु की प्लेट को नाइट्रिक एसिड या फेरिक क्लोराइड में डुबोया जाता है, जिससे धातु का उघड़ा हुआ भाग अम्ल से प्रक्रिया करके प्लेट पर गहरी रेखाएँ छोड़ देता है। इसके बाद प्लेट के बाकी बचे हुए भाग से मोम या एक्रिलिक के लेप को साफ़ कर दिया जाता है। छापा तैयार करने के लिए इस प्लेट की पूरी सतह पर स्याही लगाई जाती है और फिर उसे पोंछ दिया जाता है। इस प्रकार गहरी रेखाओं में स्याही अवशिष्ट रह जाती है और उभरी सतह साफ़ हो जाती है। इसके बाद प्लेट को उच्च दबाव वाली मशीन पर लगाकर कागज़ की शीट पर दबाया जाता है, इसमें कागज़ को नम कर दिया जाता है जिससे कागज़ मुलायम बना रहे और प्लेट के गहरे भाग में जाकर स्याही को सोख सके और इस प्रकार छापा तैयार हो जाता है। इस विधि को कई बार दोहराकर रेखांकन के कई छापे लेकर अनेक प्रतिलिपियाँ तैयार की जा सकती हैं।

कलम — चित्रकला की शैली।

कला समीक्षक — वह व्यक्ति, जो कला की रचना कला के मूल्यांकन और उसकी समालोचना करने में प्रवीण है। वह अपने विचारों को सामान्यतः समाचार-पत्रों, पत्रिकाओं, वेबसाइट्स एवं पुस्तकों में प्रकाशित करता है।

केरेसक्युरो — चित्रकला में प्रकाश एवं छाया का प्रयोग।

गौश — गौश चित्रण में अपारदर्शी जलरंग से चित्र बनाने की विधि, जिसमें प्राकृतिक रंग को माध्यम बनाते हैं और कभी-कभी अन्य पदार्थों को मिलाकर चित्रण किया जाता है।

घनवाद — घनवाद एक आंदोलन था जो पाब्लो पिकासो और जार्ज ब्राक द्वारा निर्मित 1907 की रचनाओं से संबंधित था। ये दोनों कलाकार अफ्रीकन पारंपरिक मूर्तिकला एवं पॉल सूज़ा की चित्रकला से बहुत अधिक प्रभावित थे। घनवादी कलाकृतियों में वस्तु को विश्लेषण के लिए विघटित किया जाता है, जहाँ कलाकार वस्तु को एक कोण से दिखाने के बजाय कई कोणों से एक ही सतह पर प्रदर्शित करता है।

© NCERT not to be republished

डिजिटल कलाकार — वह व्यक्ति जो डिजिटल तकनीकों, जैसे— कंप्यूटर, ग्राफ़िक्स, डिजिटल फ़ोटोग्राफ़ी और कंप्यूटर का प्रयोग कला सृजन के लिए करता है, जिसमें कलाकृतियों की बहुल उत्पादन की संभावनाएँ निहित हैं।

देशज कला — कलाएँ और विचार जब किसी व्यक्ति के अपने अतीत, संस्कृति और पारंपरिक व्यवहार से अभिप्रेरित होते हैं और जिनकी जड़ें उनकी अपने अतीत में होती हैं। इस प्रकार की कला को देशज कला कहते हैं।

देहयष्टि मुखाकृति — व्यक्ति के मुखाकृति उसके भाव या उसकी सामान्य प्रतीति। यह किसी वस्तु के लिए भी हो सकता है।

नया माध्यम (न्यू मीडिया) — एक कला रूप जो नई मीडिया तकनीकों के साथ कलाकृतियों का निर्माण करता है। जैसे कि डिजिटल कला, कंप्यूटर ग्राफ़िक्स, आभासी कला और अंतरक्रियात्मक कला प्रविधियाँ आदि। यह अपने आप में चित्रकला और मूर्तिकला जैसे पारंपरिक माध्यमों से एकदम विपरीत है।

नीम कलम — रेखाचित्र।

पिंटाडोज़ — स्पेन की एक चित्रण विधा जिसे शरीर पर भी किया जाता है।

प्रकृतिवाद — विवरण के विशुद्ध चित्रण के आधार पर निरूपण की एक शैली और सिद्धांत।

प्रदर्शन कला — प्रदर्शन कलाओं का जन्म 1970 के दशक में पश्चिम में हुआ था, जब कलाकारों ने स्वयं के जीवंत शरीर को कलाकृति के सृजन में प्रयुक्त किया। उनका प्रदर्शन या तो जीवंत होता है अथवा रिकॉर्डिड जिसके माध्यम से उसे दर्शक के सामने अभिनित किया जाता था।

प्रिंट मेकिंग — यह छापे को तैयार करने की एक विधि है, जिसमें छाया चित्रों के पुनः उत्पादन की अपेक्षा मौलिक सृजनात्मक तत्वों का प्रयोग किया जाता है। इसमें एकल सतह के द्वारा छापा तैयार किया जाता है, जिसे *मेट्रिक्स* कहते हैं। प्रत्येक प्रति प्रतिलिपि नहीं होती है, बल्कि वह एक मौलिक रचना की भाँति समझी जाती है, क्योंकि यह किसी दूसरे कार्य का पुनः उत्पादन नहीं है।

पुनर्जागरण कला — कला की (चित्रकला, मूर्तिकला, अलंकरण एवं स्थापत्य कला) और साहित्य की एक शैली जिसका उदय यूरोप के इटली में 1400 के लगभग हुआ था। इसके अंतर्गत यूनान के प्राचीन शास्त्रीय कलाकृतियों के प्रभाव से यूरोप में कला और स्थापत्य चौदहवीं और सोलहवीं शताब्दी के मध्य इसका पुनः आगमन हुआ।

© NCERT not to be republished

पुष्पिका पृष्ठ	—	यह किसी पुस्तक के प्रकाशन के विषय में प्रकाशन का स्थान, प्रकाशन का नाम, प्रकाशन की दिनांक आदि का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करता है।
पुस्तक-अनुरागी	—	पुस्तकों को संग्रहित करने और उनसे प्रेम करने वाला व्यक्ति।
फ़ोलियो या पृष्ठ	—	किसी ग्रंथ का हिस्सा या वह एकल मृख पृष्ठ जिस पर संख्या अंकित होती है, उसे फोलियो कहते हैं।
भ्रम्रवाद	—	एक प्रकार की शैली है जिसमें कलात्मक प्रतिरूपण इस प्रकार किया जाता है कि वह यथार्थ से बिलकुल साम्य रखता हुआ दिखाई देता है।
भित्ति चित्र	—	एक कला जिसे सीधे भित्ति, छत या किसी द्वि-आयामी विशाल सतह पर सृजित किया जाता है। यह प्राचीनतम कला का एक रूप है, जिसकी प्राचीनता प्रागैतिहासिक गुफाओं तक है।
मंडी	—	थोक व्यापार के लिए स्थानीय बाज़ार।
मर्मज्ञ या पारखी	—	वह व्यक्ति जो कला, भोजन एवं पेय के विषय में गहन ज्ञान रखता है एवं उसमें गहरी रुचि लेता है।
यथार्थवाद	—	उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में फ्रांस में उद्भूत एक कला आंदोलन।
रहस्यवाद	—	धार्मिक अनुष्ठान, जिनमें वैचारिक, नैतिक, अनुष्ठान, मिथक, जादू, किंवदंती आदि तत्व निहित होते हैं।
लिथोग्राफ़ी	—	यह चित्रकला की एक विधि है, जिसका उदय अठाहरवीं शताब्दी के अंत में हुआ था। लिथोग्राफ़ी में सरंध्र सतह को लिथोग्राफ़ी बनाने के लिए प्रयोग किया जाता, जो सामान्यत: चूने के पत्थर से बनी होती है, चूने के पत्थर पर आकृति को तैलीय माध्यम से रेखांकित करते हैं। फिर उसके ऊपर अम्ल लगाया जाता है, जिससे तैलीय पदार्थ (ग्रीज़) चूने के पत्थर पर स्थानांतरित हो जाए। इसके बाद सरेस या गोंद जैसे पदार्थ जो पानी में घुलनशील होता है, उसे लेप दिया जाता है। यह लेप चूने के पत्थर के रिक्त स्थान पर जहाँ ग्रीज़ नहीं होता है, वहाँ जम जाता है, जिसे बाद में नर्म कागज़ पर दबाव डालकर छाप लिया जाता है।

© NCERT not to be republished

लीनोकट — एक उभार युक्त मुद्रण प्रक्रिया जिसमें लिनोलियम की एक पतली चादर (सतह) का प्रयोग किया जाता है (इसे लकड़ी के ब्लॉक पर भी चढ़ाया जा सकता है)। कोमल माध्यम होने के कारण इसे सरलता से (उत्कीर्ण) उकेरा जा सकता है।

लोकप्रिय कला — कला का वह स्वरूप है जिसे तकनीक के द्वारा किसी कला की पुन: कापी को बहुल संख्या में उत्पादित किया जा सकता और अनेक प्रतिलिपियों में उत्पादित किया जाता है, जो विशाल जनसमूह के लिए सरलता से उपलब्ध होती है। इसका एक उदाहरण कलैंडर आर्ट भी है। प्रसिद्ध कलाकार उच्च कला से संबंधित होते हैं। अपने कार्यों को कला दीर्घा में प्रदर्शित करते हैं, लेकिन उनकी कला की विषयवस्तु दैनिक जीवन से ली गई होती है।

वीडियो कला — वीडियो कला में गतिज आकृतियों का श्रव्य आँकड़ों के बिना या साथ में प्रयोग किया जाता है। इसका उदय 1960 या 1970 के दशक में पश्चिम में हुआ और भारत में यह सन् 2000 के आसपास लोकप्रिय हुई।

शैली — कला, संगीत एवं साहित्य की शैली है।

संग्रहाध्यक्ष (क्यूरेटर) — परंपरागत रूप से एक सांस्कृतिक धरोहर संस्थान (जैसे— पुरा लेखागार, पुस्तकालय, संग्रहालय या उपवन) का रखरखाव (निरीक्षक) करने वालों को कहते हैं। समकालीन कला में संग्रहाध्यक्ष वह व्यक्ति है जो किसी निर्दिष्ट विषयवस्तु पर कलाकृतियों के प्रदर्शन की नीति या प्रविधि को निर्धारित करता है। संग्रहाध्यक्ष से दर्शक को संबोधित करने की अपेक्षा की जाती है। इसलिए प्रदर्शनी के लिए सूचक पत्र, लेख, सूची, सहायक सामग्री तैयार करना उसका दायित्व है।

सामुदायिक कला — किसी समुदाय के स्थित चातुर्दिक संगठित कला को कहते हैं। इसमें उस समुदाय के अंतःक्रिया और संवाद को चारित्रिक रूप से प्रस्तुत किया जाता है। इस शब्द का प्रयोग 1960 के अंतिम दशक में प्रयुक्त हुआ। जब संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा, युनाईटेड किंगडम, आयरलैंड और आस्ट्रेलिया में यह एक आंदोलन के रूप में विकसित हुआ। भारत में नवजोत अल्ताफ और के.पी. सोमन जैसे दो हज़ार कलाकार इसमें शमिल थे। इन लोगों ने स्थानीय समुदाय के साथ सामाजिक विषयवस्तु, जैसे— शोषण, ग्रामीण एवं शहरी भेद और जाति असमानता पर कार्य किया।

© NCERT not to be republished

स्थापन कला — समकालीन कला का एक प्रकार जो परंपरागत माध्यम, जैसे— चित्रकला, मूर्तिकला से भिन्न न होते हुए भी अपनी रचना में अनेक विभिन्न मिश्रित पदार्थों को सम्मिलित करता है और स्थान तथा रूप के प्रत्यय को यथार्थ रूप में रूपांतरित करता है। इसमें दैनिक जीवन में प्रयुक्त होने वाले पदार्थों, जैसे— प्रविधि, वीडियो, इंटरनेट आदि का उपयोग दर्शक के स्नायु पर दृष्टिगत प्रभाव डालने के लिए किया जाता है।

स्फुमातो — एक तकनीक है जिसमें रंग एवं उनकी आभाएँ एक-दूसरे में धीरे-धीरे विलीन हो जाती हैं और आकृति की बाह्य रेखाएँ कोमल हो जाती हैं, जिससे रूपाकार धुँधले से प्रतीत होते हैं।

स्थिति जन्य लघुता — किसी वस्तु का अंकन इस प्रकार किया जाए कि वह अपने वास्तविक दूरी की अपेक्षा कम दूरी या अधिक दूरी के प्रभाव को एक विशेष परिप्रेक्ष्य या परिदृश्य के एक कोण को प्रदर्शित करे।

सौंदर्य शास्त्री — वह व्यक्ति, जो कला और सौंदर्य की सराहना करता है और इसके प्रति संवेदनशील है।

© NCERT not to be republished

ग्रंथ सूची

आर्चर, डब्ल्यू. जी. 1959. *इंडिया एंड मॉडर्न आर्ट*. जॉर्ज ऐलन और अनविन, लंदन.

क्रेवन, जूनियर और सी. रॉय (संपादक). 1990. *रामायण पहाड़ी पेंटिंग*. मार्ग प्रकाशन, बॉम्बे.

क्रैमरिक, स्टेला. 1975. *इंडियन पेंटिंग्स फ़्रॉम द पंजाब हिल्स— ए सर्वे एंड हिस्ट्री ऑफ़ पहाड़ी मिनिएचर पेंटिंग्स*. वॉल्यूम I और II. ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली.

गुरु, आशा. 2009. *मॉडर्न एंड कंटेम्परारी इंडियन आर्ट*. आशा गुरु, मुंबई.

गोस्वामी, बी. एन. और ई. फिशर. 1992. *पहाड़ी मास्टर्स— कोर्ट पेंटर्स ऑफ़ नॉर्दन इंडियन*. आर्टबस एशिया पब्लिशर सप्लीमेंटम XXXVIII एंड म्यूज़ियम रीटबर्ग ज्यूरिख, स्विट्ज़रलैंड.

चक्रवर्ती, अंजन. 2005. *इंडियन मिनिएचर पेंटिंग*. रोली बुक्स, नयी दिल्ली.

जेब्रोस्की, मार्क. 1983. *दक्कन पेंटिंग*. यूनिवर्सिटी ऑफ़ कैलिफ़ोर्निया प्रेस, बर्कले.

टैगोर, रवींद्रनाथ. 1997. *शांतिनिकेतन— द मेकिंग ऑफ़ कॉन्टेक्चुअल मॉडर्निज़्म*. राष्ट्रीय आधुनिक कला संग्रहालय, नयी दिल्ली.

डालमिया, यशोधर. 2001. *द मेकिंग ऑफ़ मॉडर्न इंडियन आर्ट— द प्रोग्रेसिव*. ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयॉर्क.

द्विवेदी, वी. पी. 1980. *बाराहमासा— द सोंग ऑफ़ सीज़न इन लिटरेचर एंड आर्ट*. अगम कला प्रकाशन, दिल्ली

बीच, मिलो क्लीवलैंड. 1992. *मुगल एंड राजपूत पेंटिंग*. कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैम्ब्रिज, यू.के.

मागो, प्राण नाथ. 2001. *कंटेम्परारी आर्ट इन इंडिया— ए पर्सपेक्टिव*. सौमित्र मोहन (अनुवादक). 2006. नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया. नयी दिल्ली.

मितर, पार्थ. 1994. *आर्ट एंड नेशनलिज़्म इन कोलोनियल इंडिया (1850–1922)*. कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, इंग्लैंड.

_____. 2001. *इंडियन आर्ट*. ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, यू.के.

_____. 2007. *द ट्राइम्फ़ ऑफ़ मॉडर्निज़्म— इंडियाज़ आर्टिस्ट्स एंड द अवंत गार्डे (1922–47)*. ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली.

© NCERT not to be republished

रंधावा, एम. एस. 1959. *बसोहली पेंटिंग*. प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, नयी दिल्ली.

______. 1960. *कांगड़ा पेंटिंग ऑफ़ भागवत पुराण*. राष्ट्रीय आधुनिक कला संग्रहालय, नयी दिल्ली.

______. 1962. *कांगड़ा पेंटिंग ऑन लव*. राष्ट्रीय आधुनिक कला संग्रहालय, नयी दिल्ली.

______. 1971. *कांगड़ा रागमाला पेंटिंग*. राष्ट्रीय आधुनिक कला संग्रहालय, नयी दिल्ली.

______. 1972. *कांगड़ा वैली पेंटिंग*. प्रकाशन प्रभाग, भारत सरकार, नयी दिल्ली.

रंधावा, एम. एस. और जॉन केनेथ गालब्रेथ. 1968. *इंडियन पेंटिंग— द सिएन, थीम्स एंड लेजेंड्स*. ऑक्सफ़ोर्ड और आई.बी.एच. प्रकाशक कंपनी, कलकत्ता.

सिन्हा, गायत्री. 2003. *इंडियन आर्ट— एन ओवरव्यू*. रूपा, नयी दिल्ली, इंडिया.

सेन, गीति. 2001. *आर्ट इन इंडिया*. मैक्समुलर भवन, नयी दिल्ली, इंडिया.

© NCERT not to be republished